# लेखक परिचय

## डॉ. हरिओम

जीन्द (हरियाणा) के ग्रामीण आंचल में 10 जनवरी 1959 को जन्में तथा कृषक परिवार की पृष्ठभूमि में आरम्भिक शिक्षा के बाद पी. एच.डी. (सस्य विज्ञान) की डिग्री चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से प्राप्त की। डिग्री हेतू किए गए संकर धान पर उत्तम शोध कार्य के लिए डॉ. वी.डी. कश्यप स्वर्ण पदक से सम्मानित।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के सस्य विज्ञान विभाग में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत्त हैं। पिछले 24 वर्षों से मुख्य रूप से धान–गेहूं फसल चक्र, फसल प्रणाली व कृषि प्रणाली के उत्पादन सम्बन्धी शोध कार्य में संलग्न हैं। साथ ही देश एवं विदेश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में 150 से अधिक शोध पत्रों/लेखों और 6 पुस्तकों/बुलेटिन के लेखन में योगदान किया है। अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार 'नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट' में श्रेष्ठ शोध पत्र प्रस्तुति हेतू सम्मानित।

आध्यात्मिक पुनर्जन्म के लिए 14 नवम्बर 1986 को राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज के चरण कमलों में पहुंचे और दीक्षा ग्रहण की। सतगुरू की आज्ञा से 1 फरवरी 1998 से आध्यात्मिक कार्य के मिशन में संलग्न हैं। अध्यात्म को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया और 18 आध्यात्मिक पुस्तकों की रचना की।

# पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य

**राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र**
**(हरियाणा)**

# पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य

सर्वाधिकार सुरक्षित

जून 2007

**डा० हरिओम**

वरिष्ठ वैज्ञानिक

**राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र**
**(हरियाणा)**

# विषय - वस्तु


| क्रम सं. | विषय | पष्ठ सं. |
|---|---|---|
| 1. | आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य | 1 |
| 2. | पथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य | 5 |
| 3. | धर्म का भविष्य - एक रूपरेखा | 45 |
| 4. | जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न | 55 |
| 5. | पुस्तक सूची | 56 |


**राधास्वामी।**

**राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय।**

**राधास्वामी।**

# समर्पित

**राधास्वामी दयाल परम् संत**

**सतगुरू ताराचन्द जी महाराज**

**के चरण कमलों में।**

# आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य

राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज की प्रेरणा से हमने संकल्प लिया है कि आध्यात्मिक कार्यों के लिए किसी से भी पैसों की सेवा नहीं ली जाएगी और किसी आश्रम की स्थापना नहीं की जाएगी क्योंकि मेरा विश्वास है कि यदि कोई आध्यात्मिक सूर्य उदय होना चाहता है तो वह इतना सक्षम है कि वह अपना रास्ता स्वयं ही बनाएगा, यह उसकी आवश्यकता है और मजबूरी भी। यदि वह स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए किसी धन और आश्रमों का मोहताज है तो मुझे ऐसा अध्यात्म स्वीकार नहीं है।

व्यक्ति का धन दीनहीन की सेवा के लिए हो, गुरू की विलासिता के लिए नहीं। आज के अध्यात्म का मार्ग यदि झोंपड़ी की तरफ नहीं जाता है तो वह गुरूओं के आलीशान महलों की तरफ तो कतई नहीं जा सकता है। सर्वभूतों, दीन-दुःखियों और अपने चारों तरफ के वातावरण में ही सतगुरू के दर्शन हों। मनुष्य का हृदय ही आश्रम हो जो हर जीव-अजीव को शांति दे और उसके लिए सुख और परोपकार की कामना करे। व्यक्ति का घर ही आश्रम हो जहां पर माता-पिता और आगन्तुक परमात्मा तुल्य हों। शान्ति, विकास और सुरक्षा का आधार कम्यून, संघ या कोई गठजोड़ नहीं बल्कि स्वयं व्यक्ति हो जो समाज व वातावरण की जरूरत को समझे। व्यक्ति के विकास से समाज और देश के विकास का मार्ग स्वयं ही निर्मित होगा। यही आध्यात्मिक साम्यवाद है जो व्यक्ति एवं घर से आरम्भ होता है और विश्वमानव या महामानव के निर्माण पर इसकी पूर्ति होती है।

अध्यात्म का कार्य करने के लिए और उसमें जीने के लिए हमें किसी मन्दिर, मस्जिद, चर्च या गुरूद्वारे की आवश्यकता नहीं है। इस कार्य के लिए केवल एक ही इन्फरा-स्ट्रक्चर या व्यवस्था चाहिए और वह है मनुष्य रूपी शिवालय, मनुष्य रूपी देवालय। मिट्टी के एक तत्व से बने तीर्थ स्थान, मूर्ति या शास्त्र इसकी आवश्यकता नहीं हैं बल्कि परमात्मा के जीवन से भरपूर पंचतत्व से निर्मित मनुष्य का शरीर चाहिए जिसके अन्दर



स्वयं सष्टि का स्वामी निवास करता है। मनुष्य के मन और हृदय में सारे देवी-देवता, सारे तीर्थ व शास्त्र समाए रहते हैं और यहीं से इन सभी की पैदायश है।

बुल्लेशाह कहते हैं-

**मन्दिर ढ़ाहदे मस्जिद ढ़ाहदे, ढ़ाहदे जो कुछ ढ़हंदा ए।**
**पर दिल किसी दा न ढ़ाहवी रब दिलां विच रहंदा ए।।**

मेरा ऐसा मानना है कि यदि मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक सूर्य अर्थात् विज्ञानमय या आनन्दमय पुरूष की एक किरण भी संचित हो जाती है तो वहां पर हर तरह की बरकत स्वतः ही बहने लगती है। वह धरती सबको अपनी तरफ खींचने लगती है। सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक व आर्थिक चेतना का विकास होने लगता है। किसी समाज में यदि एक भी व्यक्ति ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह समाज ही नहीं बल्कि देश भी उन्नति के शिखर पर पहुंचता है। ऐसे समाज या देश को हानि पहुंचाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। उत्थल-पुत्थल अवश्य आती हैं लेकिन हर उत्थल-पुत्थल जीवन की नई-२ सम्भावनाओं व चुनौतियों को जन्म देती है। कर्मयोगी समाज के लिए यही सम्भावनाएं और चुनौतियां वरदान बनती हैं और सुनहरे भविष्य का निर्माण करती हैं।

मनुष्य के लिए शारीरिक या मानसिक धर्म अलग-२ हो सकते हैं लेकिन आत्मा या रूह का केवल एक ही धर्म हो सकता है और वह है प्रेम। सच्चा प्रेम मनुष्य को जोड़ता है तोड़ता नहीं। प्रेम अनहद है जो हर हद को पार करने का सामर्थ्य रखता है। प्रेम की कोई जात नहीं है, प्रेम किसी धर्म या सम्प्रदाय का मोहताज नहीं है। वह यह नहीं पूछता कि सामने वाला व्यक्ति हिन्दू है या मुसलमान, सिख है या ईसाई, ब्राह्मण है या शुद्र। वह तो केवल देना जानता है, लेना उसकी फितरत ही नहीं है। अतः इस भौतिक संसार में प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही मार्ग और प्रेम ही मंजिल है। इस मार्ग में किसी अवतार, पैगम्बर या मसीहा की बाहरी पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है लेकिन इनके आदर्शों का अनुसरण करके हमें इन्हें अपने ही अन्दर जीवित करना होगा। इनकी दैविक चेतना का अनुभव हमें अपनी ही आत्मा के अन्दर करना होगा तभी विश्व गांव का सपना साकार

हो सकेगा और धरती पर स्वर्ग बनाने की इच्छा की प्राप्ति हो सकेगी। वरना धर्म और समाज की ये दीवारें मनुष्य को हमेशा आपस में बांटती ही रहेंगी।

प्रेम सार्वभौमिक धर्म है, जिसे मनुष्य के साथ-२ पशु और पौधा भी मानता है। जीव-अजीव की यह सारी सष्टि इसी प्रेम के खिंचाव की शक्ति के कारण ही भिन्न-२ अस्तित्वों में बंटी हुई है और हर एक अस्तित्व अपनी पूर्ति के लिए दूसरे अस्तित्व के चारों ओर चक्कर काट रहा है। पौधा, पशु, पक्षी, जीव-अजीव हमारे किसी धर्म या शास्त्र को नहीं जानते, वे तो बस प्रेम की भाषा को पहचानते हैं। अतः प्रेम का धर्म (धर्मे-सीना) ही व्यावहारिक धर्म है जो मनुष्य को शाश्वत धर्म या धर्मे-हकीकत से वाकिफ करवाता है। इसलिए मानव कल्याण के इस यज्ञ में हमें किसी धन या द्रव्य की आवश्यकता नहीं है बल्कि प्रेम व पवित्र विचार की आहुति चाहिए और उसी के प्रति संकल्प की आवश्यकता है।

माता-पिता और परिवार से मिली आध्यात्मिक पष्ठभूमि ने हमेशा मेरा मार्गदर्शन किया है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। आध्यात्मिक मिशन का यह कार्य मेरी पत्नी और आध्यात्मिक सहयोगी श्रीमती बिमल की प्रेरणा से आरम्भ हुआ। मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचन्द जी महाराज ने इस प्रेरणादायक चिंगारी को अपनी तवज्जह और दया के हाथ से ध्यान-भजन की हवा देकर ब्रह्म अग्नि में परिवर्तित किया जो हर समय योगयज्ञ की ज्योति (नूर) बनकर अन्दर जलती रहती है और अनहद नाद बनकर खुदाई कलमा (वर्ड) सुनाती रहती है। सम्भवतः इसी आध्यात्मिक चिंगारी को आंखों में देखकर मेरे सतगुरू शहनशाह ने मेरा नामकरण किया और मुझे 'प्रकाश' के नाम से पुकारने लगे। तब से वे हम दोनों को बिमलप्रकाश कहकर पुकारते थे। आज सत्संग का यह कार्य सतगुरू-मुर्शिद की दया और मेहर से ही आगे बढ़ रहा है और इसमें बिमल का विशेष योगदान है। आध्यात्मिक दष्टि से देखा जाए तो बिमल का ध्यान हमेशा ही सारी संगत में अव्वल रहा जिसकी चर्चा मेरे सतगुरू समय-समय पर संगत के बीच में करते रहते



थे।

यह मैं उन लोगों के लिए लिख रहा हूं जो स्त्री को तुच्छ व भोग की वस्तु समझते हैं और कहते हैं कि औरत आध्यात्मिक ऊँचाई को नहीं छू सकती है। मेरे सतगुरू कहते थे कि परमात्मा ने दो ही जातियां बनाई हैं, एक स्त्री व दूसरी पुरूष। यही दो जातियां पुरूष और प्रकति बनकर सष्टि का सजन करती हैं। जब स्त्री और पुरूष स्वयं का आधा अस्तित्व एक-दूसरे को समर्पित कर देते हैं तो ये अर्धनारीश्वर बनकर एक दूसरे का अंग-प्रत्यंग होकर कार्य करते हैं और एकता के सूत्र में बंध जाते हैं। प्रकति जब अपना पूर्ण समर्पण कर देती है तो यह परामाया या पराप्रकति या राधा बनकर पुरूष (स्वामी) के अन्दर समा जाती है और पुरूष पराप्रकति या पराशक्ति बनकर अपने परम् शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है जहां पर लिंग-भेद, जाति-पाति और धर्म-सम्प्रदाय सभी गुण व आकार अस्तित्वहीन हो जाते हैं। ऐसे ब्रह्मरूप या सतगुरू रूप का अनुभव जो भी व्यक्ति करता है वही ब्राह्मण कहलाता है। कुण्डलीनी शक्ति के सुदर्शन चक्र और आध्यात्मिक सूर्य व चन्द्रमा के दर्शन स्वयं के अन्दर करता है वही सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी कहलाता है। ऐसे आत्मिक स्रोत के आगे सारी भौतिक सत्ता की ऐश्वर्यता नतमस्तक हो जाती है और ऐसे स्रोत का मार्ग यदि किसी सांसारिक विलासिता का मोहताज है तो यह एक विडम्बना है। मैं यह नहीं कहता कि मुझे यह सब प्राप्त हो गया है बल्कि इस आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति मैं प्रयासरत हूं ताकि पूरी मानवता इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहभागी बन सके। अतः इस प्रयास रूपी यज्ञ में मैं आप सब को प्रेम और पवित्र विचार की आहुति देने के लिए आमन्त्रित करता हूं। मुझे विश्वास है कि एक दिन यह आध्यात्मिक लक्ष्य अवश्य ही फलित होगा और पथ्वी पर रहने वाले मानस का अतिमानसीकरण होगा।

प्रस्तुत संकलन इसी आध्यात्मिक मिशन की जागति व पूर्ति के लिए किया गया है। हमें आशा है कि यह संकलन एक क्रियात्मक, रचनात्मक और दिव्यात्मक अध्यात्म को पाठकों के हृदय में प्रज्जवलित करेगा और आत्मिक धर्म तथा सच्चे अध्यात्म की खोज करने में सहायता करेगा।



**राधास्वामी।**

# पथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य

हजारों वर्ष पहले वैदिक ऋषियों ने यह परिकल्पना की थी कि पथ्वी ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में शांति हो, अमन हो और सब जीवों का शांतिपूर्ण सहवास हो। आगे चलकर महाराजा अग्रसेन ने इस विचार को अपने राज्य में अमली जामा पहनाया और एक खुशहाल व विकासशील राज्य की स्थापना की जिसमें कोई भी दुःखी नहीं था और सभी व्यक्ति एक दूसरे की सहायता करते थे। वह राज्य आध्यात्मिक साम्यवाद का एक अनूठा उदाहरण था। लेकिन पश्चिमी जगत में 'पथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य' यह संदेश ईसा-मसीह के आने के बाद प्रबल रूप से जनसाधारण की आवाज बनकर गूंजा। देखते-२ ईसा-मसीह सम्राट की आंखों की किरकिरी बन गए। जब यह संदेश जन आन्दोलन बनने लगा तो राजा को भय सताने लगा कि यह व्यक्ति साम्राज्य के लिए खतरनाक है इसलिए इस व्यक्ति का जीवित रहना ठीक नहीं है। राजा ने ईसा मसीह को सूली पर चढ़ाने का हुक्म दे दिया। ईसा मसीह तो चले गए लेकिन उनके जाने के बाद यह संदेश आग की तरह लोगों में फैलने लगा। चर्च की संस्थाओं ने समय भी निश्चित कर दिया कि उस दिन कयामत आएगी और ईसा मसीह पुनः पथ्वी पर लोटेंगे और स्वर्ग के साम्राज्य में केवल उन्हें दाखिला मिल सकेगा जो चर्च के सदस्य होंगे। चर्च का सदस्य बनने के लिए लोगों में होड़ लग गई। देखते-२ चर्च विशाल धन और बल का केन्द्र बन गया। चर्च फादर और ईसाई धर्म के संरक्षक आज के भारतीय गुरूओं की तरह



विलासिता के जीवन में डूबते चले गए। दूसरी तरफ ईसाई धर्म में उठी धार्मिक क्रांति ने संसार की राजनिती को प्रभावित किया जिससे सामाजिक और आर्थिक स्थिति भी प्रभावित होने लगी। अनेक धार्मिक युद्ध लड़े गए और साम्राज्यवाद के विस्तार के लिए हर तरह के हथकण्डे अपनाए गए। धीरे-धीरे ईसाई धर्म का विस्तार संसार में इतना हो गया कि उनके राज्य में सूर्य कभी भी अस्त नहीं होता था। आज भी ईसाई धर्म का विस्तार संसार में सबसे अधिक है। अतः 'पथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य' विषय पर चिंतन करने के लिए सबसे पहले ईसाई धर्म के मौलिक स्वरूप को जानना अति आवश्यक है। ईसाई धर्म की चेतना का आंकलन किए बिना यह जानना संभव नहीं है कि क्या संसार की धार्मिक, राजनैतिक और प्राकतिक विभिन्नता के रहते हुए पथ्वी पर ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना हो पाना संभव है? इसके लिए सबसे पहले संसार के सभी आस्तिक और नास्तिक धर्म के अनुयाइयों के लिए यह आवश्यक है कि धर्म व अध्यात्म के वास्तविक रूप को समझा जाए।

आरम्भ से ही ईसाई धर्म में कुछ प्रश्न समय-समय पर उठते रहे हैं जिन्होंने लोगों को विचलित किया और धार्मिक पुरोहितों को असामान्य स्थितियों का सामना करना पड़ा। सम्राट कोन्सटेंटाईन ने जब ईसाई धर्म को राजधर्म घोषित कर दिया और ईसाई पादरियों को राज्य में ऊंची-ऊंची पदवियों से नवाजा गया तब सबसे पहले यही प्रश्न सामने आया कि क्या ईसा मसीह वास्तव में ईश्वर के दूत थे या दूसरे मनुष्यों की तरह एक सामान्य व्यक्ति थे।

समय के साथ-२ ईसाई धर्म की नींव मजबूत होती चली गई। चर्च, धन और बल की एक विशाल संस्था बन गया। कुछ और प्रश्न जनमानस के मानसिक पटल को आन्दोलित करते रहे लेकिन खुलकर कोई भी व्यक्ति उन्हें प्रकट नहीं कर पाया क्योंकि ईसा मसीह और बाईबल की किसी भी पंक्ति के बारे में कोई भी शंका व्यक्त करना अपनी मौत को आमंत्रित करना था। धीरे-२ आधुनिकरण का दौर चल निकला। धन-वैभव और एश्वर्य की लहर चलने लगी। औद्योगिकरण के साथ-२ विज्ञान के विकास ने भी देखते-देखते पश्चिमी देश के लोगों को उन्नति से चकाचौंध कर दिया। अब व्यक्ति आजादी महसूस करने लगा था। शिक्षा का प्रचार और प्रसार भी पूरजोर से हो रहा था। इसके ऊपर प्रिंटिग प्रैस की खोज ने उसे और भी गति प्रदान की। इससे एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र के लोगों के बीच ज्ञान का आदान-प्रदान बढ़ने लगा। धर्म और धर्मग्रन्थों की व्याख्या वैज्ञानिक तरीकों से होने लगी। आरम्भ में चर्च ने शिक्षा और विज्ञान के ऊपर काफी पाबंधियां लगाई लेकिन लोगों की व्याख्याओं और व्यक्तिगत आजादी की बढ़ती मांग ने इन पाबंधियों की तरफ अधिक ध्यान नहीं दिया। जब चर्च ने कहा कि धर्मग्रन्थों की नई व्याख्याएं न की जाएं तो बुद्धिजीवियों ने कहा कि ऐसा करने से धर्म का अधिक प्रचार होगा और मसीहा का संदेश दूर दूर तक पहुंचने में कामयाब होगा। यह सत्य सिद्ध हुआ लेकिन इससे चर्च की सार्वभौमिक प्रभुता कम होती चली गई।

लोगों ने भी ईसा मसीह और बाईबल की पूर्णता पर संदेह उठाने आरम्भ कर दिए। बाईबल का निर्माण ईसा मसीह की मत्यु से काफी समय बाद हुआ। भिन्न-भिन्न लोगों द्वारा बताई गई स्मतियों को जोड़कर



इस धार्मिक पुस्तक की रचना की गई। ईसा मसीह जो हजारों साल आगे की बातें कर रहे थे उन्हें जनसाधारण के लिए समझ पाना आसान न था। भिन्न-२ व्यक्तियों ने अपने स्वभाव और पसंद के आधार पर उनकी शिक्षाओं को मणिबद्ध किया जिनका आंशिक या पूरी तरह से अर्थ ही बदल गया। जन साधारण हमेशा से चमत्कारों को नमस्कार करता आया है इसलिए ईसा मसीह को भी चमत्कार-पुरूष के रूप में स्थापित किया गया। उनकी आत्मा का अनुभव मुख्य नहीं था बल्कि उनके मसीहा रूप को और चमत्कारों को अधिक प्रचारित किया गया। ऐसा नहीं है कि उस समय यहूदी धर्म आत्मिक सम्पदा से खाली था। उस समय का रबीज पंथ आध्यात्मिक खजाने से ओतप्रोत था जिसमें प्राचीन यूनान का आध्यात्मिक ज्ञान भी दष्टिगोचर होता था लेकिन उपनिषद् ज्ञान की तरह यह ज्ञान भी साधारण मनुष्य की पहुंच के अन्दर नहीं था और व्यक्ति यहूदी कर्मकाण्डों और धार्मिक पुरोहितों के शोषण से घबराया हुआ था। जिस प्रकार महात्मा बुद्ध ने पुरोहितों के एकाधिकार को तोड़ने के लिए आम लोगों के बीच जाकर उन्हीं की भाषा में ज्ञान को बांटा उसी प्रकार मसीहा भी देखते-२ लोगों के दिलों में घर कर गए। उनकी शिक्षाएं उनके दिलों में बस गई जो उनकी जरूरतों के मुताबिक थी। देखते-२ उनके पीछे-२ गरीब, पीड़ित और असहाय लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। यही कारण था कि ईसा मसीह के चमत्कारों को अधिक प्रचारित किया गया। आज भी यदि किसी व्यक्ति को चर्च के द्वारा संत की उपाधि से सुशोभित करना होता है तो उसमें सबसे पहले उसके द्वारा किए गए चमत्कारों की गिनती की जाती है, आत्मिक चमत्कार या आत्मिक दिव्यता को मापने के लिए उसके पास कोई पैमाना नहीं है।

आज विज्ञान चमत्कारों को नहीं मानता है। हमारी नजरें जब किसी बात को नहीं समझ पाती हैं तो वही बात हमारे लिए चमत्कार बन जाती है। इसलिए आज के व्यक्ति के लिए पुराने धर्म, जो लोगों में अंधविश्वास पैदा करते हैं तर्क संगत मालूम नहीं पड़ते हैं। समय के अनुसार धर्म की परिभाषा भी बदल गई है ठीक उसी तरह जिस प्रकार समय के साथ-साथ नास्तिक व्यक्ति की परिभाषा भी बदलती रही है। सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांस के एक वैज्ञानिक मैरीन मरसीन (1588-1648) ने यह घोषणा की कि अकेले पेरिस शहर में पचास हजार नास्तिक मौजूद हैं। जब इस बात का पता लगाया गया तो मालूम हुआ कि वे सभी परमात्मा में विश्वास करते हैं लेकिन ईसाई धर्म की बात को लेकर आशंकित हैं इसलिए वे नास्तिक हैं। आज का आस्तिक व्यक्ति कुछ समय पहले नास्तिकों की श्रेणी में गिना जा सकता था।

वैज्ञानिक युग के आते ही नया दर्शन खुलने लगा। नित्से, सिगमंड फ्रायड, चारलस डारविन, कार्ल मार्क्स, लडविग, डेविड ह्यूम, लैपलेस, डिडरोट व अन्य कई महान हस्तियों ने ईश्वर के अस्तित्व को मानने से इंकार कर दिया। एक नई बहस का जन्म हुआ जिसमें लोगों ने अनेकों ऐसे प्रश्न दागने शुरू किए जिनसे ईसाई धर्म का पारम्परिक ढांचा लहुलुहान होने लगा।

क्या ईश्वर इतना अत्याचारी है जो अपने ही पुत्र को उसकी हत्या करने के लिए बेरहमी लोगों को सौंप देता है? क्या ईश्वर इतना कमजोर है जो अपने ही पुत्र की रक्षा न कर सके? क्या ईश्वर इतना निर्दयी है जिसने धर्म की रक्षा के लिए इतने लोगों की जान ली, लाखों



यहूदियों को मार डाला और आपसी विरोध के कारण परोटैस्टैंट, केथोलिक और पूरीटेनिक ईसाईयों ने एक दूसरे पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए खून की होलियां खेली? क्या ईश्वर को आदम के पाप का पहले से ज्ञान नहीं था? यदि था तो फिर यह पाप क्यों होने दिया और सम्पूर्ण मानवता को उस पाप का अधिकारी क्यों बनाया? उसने अपने फरिश्ते माइकिल द्वारा आदम को मुक्ति का इतना कठिन रास्ता क्यों समझाया जो इतनी हत्याओं, धार्मिक जेहादों (क्रुसेडस) और आपसी वैमन्सय को जन्म देता है? आदम की मुक्ति का एक साधारण रास्ता भी तो हो सकता था फिर ऐसा क्यों किया? क्या उसका दिमाग एक मनुष्य के दिमाग से अधिक नहीं है? क्या उसका रूप मनुष्य के रूप से अधिक नहीं है? यदि वह इतना अपूर्ण, अक्षम, हत्यारा और दरिंदा है तो फिर ऐसे ईश्वर के अस्तित्व को क्यों स्वीकार किया जाए? क्या ईसा मसीह कुंवारी मेरी के गर्भ से बिना पुरूष का संपर्क किए पैदा हो सकते हैं? ट्रिनटी (ईश्वर अर्थात् पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा) के सिद्धांत ने तो हमेशा ही पूर्वी और पश्चिमी चर्च को आपस में आन्दोलित किया है।

बीसवीं शताब्दी के जीन-पाल सारतरे (1905-80) ने कहा कि यदि ईश्वर है तो भी उसके अस्तित्व को नकार देना ही उचित है क्योंकि उसके अस्तित्व को स्वीकार करना मनुष्य की आजादी को कम करना है। मोरिस पोंटि (1908-61) ने कहा कि यदि हम ईश्वर को पूर्ण मानते हैं तो फिर हमारे लिए प्राप्त करने के लिए क्या बचता है। कैमस (1913-60) ने कहा कि लोगों को बहादुरी के साथ ईश्वर के अस्तित्व को नकार देना चाहिए ताकि वे अपना सारा प्यार मानवता को लुटा

सकें। ईश्वर के अस्तित्व को मानना हमारी रचनात्मक शक्ति को कम करता है, यदि वह हमारी समस्याओं को सुलझाने में हमारी मदद करता है तो भी वह हमारी उपलब्धि और हमारे आश्चर्य को कम करता है। लाजिकल पोजिटिविस्ट, लिंगुइस्टिक दर्शन आदि से संबंधित संस्थाओं के बुद्धिजीवियों ने ईश्वर की मत्यु की घोषणा कर दी। जिस ईश्वर को हम अपने जीवन में न देख सकें, अपने जीवन में न जी सकें, जिसे किसी इन्द्रिय अनुभव से सिद्ध भी न किया जा सके, आखिर ऐसे झुठे वादों वाले और असिद्धियुक्त ईश्वर का मनुष्य के जीवन में होने का क्या अर्थ है?

दूसरी तरफ दूसरे लोगों ने वकालत की कि धर्म का होना बहुत ही जरूरी है, इसके बिना सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाएगा, कुछ भी गलत न रहेगा, मनुष्य स्वार्थी हो जाएगा, व्यक्तिगत हो जाएगा। समाज में अफरा-तफरी मच जाएगी। नास्तिक साम्राज्य और भी अधिक अत्याचारी हो सकता है। उसमें भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता बाध्य हो जाएगी। मनुष्य जो सपनों के सहारे जीता है, उसका जीवन बाधित हो जाएगा। आज के सपने ही कल की वास्तविकता हैं। आज जो असम्भव दिखाई देता है, स्वप्न दिखाई देता है वही कल को वास्तविकता का जामा पहन लेता है इसलिए व्यक्ति का सपना लेना अवरूद्ध हो जाएगा। धर्म और परमात्मा को असीमित और अनंत मानकर वह स्वप्न लेता है, ऊंची उड़ानें भरता है। यदि उसका उड़ान भरना बंद हो जाएगा तो उसका जीवन नीरस हो जाएगा। मनुष्य का जीवन आशाओं पर टिका हुआ है इसलिए परम् आशा का होना भी जरूरी है। वह हमेशा पूर्ण पुरूष की एक तस्वीर अपने दिमाग में बनाकर रखता है और वह तस्वीर उसे इस संसार में मिल पानी



कठिन है इसलिए वह हमेशा पूर्ण बनने के लिए और आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील रहता है।

इस बारे में मार्क्सवादी दार्शनिक अरनस्ट बलोच (1884-1977) कहते हैं कि ईश्वर का विचार मानवता के लिए स्वाभाविक है; सारा मानव जीवन भविष्य की तरफ देखता है। हम अपने जीवन में अपूर्णता और अधूरापन अनुभव करते हैं। पशुओं के विपरीत हम कभी भी संतुष्ट नहीं होते हैं तथा हमेशा और अधिक की कामना करते हैं इसलिए जीवन में हर एक मोड़ पर हम स्वयं के पार जाने का और विकास करने का प्रयत्न करते हैं ताकि हम अगली सीढ़ी पर पैर रख सकें। पैदा होने के बाद बच्चा लड़खड़ाकर चलता है और लड़खड़ाने वाला बच्चा अपनी इस कमी को पारकर बड़ा बच्चा बनना चाहता है, इस प्रकार यह जीवन आगे बढ़ता है। हमारे सारे स्वप्न और इच्छाएं हमेशा अप्राप्त को प्राप्त करने के विचार की तरफ केन्द्रित रहते हैं। यहां तक धार्मिक दर्शन भी इसी आश्चर्य के साथ आगे बढ़ता है जबकि इसमें सब कुछ भूल जाना होता है, फिर भी अभी नहीं, अभी नहीं का ख्याल नहीं छूट पाता है। समाजवाद भी इसी अटोपिया की कल्पना को लेकर आगे बढ़ता है जबकि कार्ल मार्क्स ने किसी भी प्रकार की निष्ठा (फेथ) को नकार दिया है इसलिए जहां भी आशा है वहीं पर धर्म भी है। बलोच ने ईश्वर को ऐसे आदर्श के रूप में देखा है जो मनुष्य के अन्दर का ईश्वर हो, कहीं दूर का नहीं।

आधुनिक ईसाई ने ऐसे धर्म की परिकल्पना की है जिसमें ईश्वर मनुष्य के रूप में न हो और हर समय उसका अंगी-संगी भी हो। संसार में व्याप्त होकर भी मनुष्य की सारी अपूर्णताओं, रूप, रंग,

जाति-पाति, समय व देश की सभी सीमाओं के पार हो। जो एक दूसरे से नफरत नहीं करे बल्कि सारे संसार में प्रेम और सदभाव का संदेश फैलाए। यही कारण है कि साठ के दशक के बाद पश्चिमी संसार में हिन्दू धर्म के ब्रह्म-आत्मा के सिद्धांत को स्वीकार किया जा रहा है। बौद्ध धर्म की शिक्षाओं और यौगिक क्रियाओं को अधिक ख्याति मिल रही है। मनुष्य रहस्यवादी धर्मों की तरफ मुड़ रहा है जो उसे अधिक धार्मिक नियमों में बांधे नहीं बल्कि उसकी व्यक्तिगत आजादी का भी ख्याल रखे। वह किसी का गुलाम नहीं बने बल्कि स्वयं का मालिक हो। ईश्वर के साम्राज्य की किसी पदवी का मोहताज नहीं हो बल्कि ईश्वर के सामर्थ्य में वह भी एक अटूट और अभिन्न अंग हो। मत्यु के बाद नहीं बल्कि इसी जन्म में वह ईश्वर के आनन्द और ऐश्वर्य का भागी बन सके।

कैरेन आर्मस्ट्रांग 'ए हिस्ट्री ऑफ गाड' में कहती हैंः हिन्दू धर्मों में देवताओं को अधिक अहमियत नहीं दी गई है। गुरू का दर्जा सभी देवी-देवताओं से ऊपर माना गया है। इससे समाज में व्यक्ति की अहमियत का पता चलता है। हिन्दूओं और बौद्ध धर्म में देवताओं के अस्तित्व को नकारा नहीं गया है। उनकी सोच है कि ऐसा करना मानवता के लिए विनाशकारक हो सकता है। इन धर्मों में देवताओं से ऊपर ब्रह्म व निर्वाण को स्थान दिया गया है। उपनिषद् जिनकी आज से लगभग पच्चीस सौ वर्ष पूर्व रचना की गई थी जो संख्या में लगभग दो सौ दो हैं, सभी एक ही संदेश देते हैं कि देवताओं के पार भी कुछ है जो अति सुंदर है, अति आनन्दायक है, कहने-सुनने से न्यारा है और फिर भी सभी वस्तुओं की भीतरी आत्मा है। ब्रह्म की व्यापकता



के बारे में छान्दोग्य उपनिषद् का उदाहरण देते हुए वे बताती हैं; श्वेतकेतू जो उद्दालक का पुत्र था, बारह वर्षों तक वेदों और शास्त्रों का अध्ययन करता रहा। गुरू के पास कठिन शिक्षण के बाद जब वह ज्ञान से भरपूर होकर पिता के पास आया तो उसने पुत्र से ब्रह्म के बारे में एक प्रश्न पूछा। श्वेतकेतू जवाब न दे सका। तब उसके पिता ने एक बड़े बर्तन में पानी लाने के लिए कहा और उसमें कुछ नमक डालने के लिए कहा। पुत्र ने वैसा ही किया, फिर पिता ने उसे अगली सुबह आने के लिए कहा। जब वह आया तो पिता ने कहा कि वह अलग-२ स्थानों से पानी का स्वाद चखे और बताए की उसका स्वाद कैसा है। पुत्र ने बताया कि सब जगहों पर एक जैसा नमकीन स्वाद है। कोई भी अन्तर नहीं हैं तब पिता ने समझाया कि जिस प्रकार पानी में यह नमक है उसी प्रकार ब्रह्म भी सारी सष्टि में समान रूप से व्याप्त है। कबीर साहब कहते हैंः

**ज्यों तिल में तेल है और चकमक में आग।**
**तेरा प्रीतम तुझमें तू जाग सके तो जाग।।**

महात्मा बुद्ध कहते हैं कि मुझे किसी भी स्थान से चखो, कहीं से काटो, हर जगह एक ही स्वाद मिलेगा-करूणा ही करूणा केवल करूणा। यही निर्वाण है। इसे किसी आत्मा या परमात्मा का नाम नहीं दिया जा सकता है। केवल जीया जा सकता है। यह अवस्था प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को यौगिक ध्यान व अभ्यास से गुजरना होता है जिसमें साधक का स्वयं के साथ पूर्ण मिलन हो जाता है। वह स्वयं के विश्वरूप में समा जाता है। छोटा नाला समुद्र में मिलकर समुद्र का शरीर धारण कर लेता है, उसकी व्यापकता में समाकर स्वयं भी

व्यापक हो जाता है। पूर्ण की इच्छा ही अब अभिन्न रूप से उसकी इच्छा बन जाती है। महात्मा बुद्ध से जब किसी ने पूछा कि निर्वाण के बाद बुद्ध कहां रहता है, तो बुद्ध ने कहा कि यह प्रश्न बेतुका है, इसका कोई अर्थ नहीं है। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार एक दीए की लौ जब बुझ जाती है और कोई यह पूछे कि लौ कहां गई। इसी प्रकार बुद्ध होता है, उसका तेल चूक जाता है, उसकी कोई इच्छा बाकी नहीं रहती है इसलिए सुख-दुःख का प्रश्न ही नहीं उठता है। वह केवल दूसरों के लिए जीता है, यही है बौद्धिसत्व और इस अवस्था को कोई भी व्यक्ति स्वयं के प्रयत्न से प्राप्त कर सकता है।

संसार के सभी धर्म मानसिक संसार की उपज हैं, भावनाओं के संसार से उत्पन्न हुए हैं जिसे ईस्लाम धर्म के सुहरावर्दी सम्प्रदाय में आलम अल-मिथाल कहा गया है। यह एक काल्पनिक संसार है, रूप और तस्वीरों के दश्यों से भरा हुआ संसार है जो एक मिस्टिक (गुप्त विद्या को जानने वाला) को परमात्मा तक पहुंचने के लिए पार करना पड़ता है। यह एक सूक्ष्म संसार है जो सीमाहीन है जिसे बुद्धि और ज्ञान से नहीं जाना जा सकता है। इसमें देवताओं और फरिश्तों का वास है। सारे धर्म इसी आलम अल-मिथाल की उपज हैं। इस मण्डल की ताकतें हमारे मन की इच्छओं के अनुसार हमारे साथ संयोग करने लगती हैं और ध्यान या स्वपन में प्रकट होने लगती हैं, जो व्यक्ति मन और तष्णा के घेरों में कैद होते है यहां की शक्तियां उन्हें भरमा देती हैं। रिद्धि-सिद्धियां दे देती हैं लेकिन परमात्मा के पास जाने से रोकती हैं। यदि साधक के अन्दर आत्मशुद्धि है तो यही शक्तियां उसे आगे ले जाने में उसकी मदद भी करती हैं। यहां पर सतोगुणी, तमोगुणी और रजोगुणी



सभी प्रकार की शक्तियों का वास है। यदि व्यक्ति तमोगुणी है तो उसके सामने काली ताकतें प्रकट हो जाती है, यदि वह रजोगणी है तो उसके अन्दर राजसी ताकतें जाग जाती हैं और यदि व्यक्ति सतोगुणी है तो उसके अन्दर फरिश्ते और देवता प्रकट होने लगते हैं। व्यक्ति जैसी इच्छा लेकर कर्म करता है, कुदरत उसी प्रकार से उसकी सहायता करने लगती है। कहा जाता है कि आलम अल-मिथाल का अनुभव हजरत मुहम्मद को भी एक रात्रि को स्वप्न में हुआ जब फरिश्ते गैबरियल ने हजरत को आसमानी घोड़े पर बिठाकर अरबिया से जेरूस्लम के हीरा पर्वत तक की यात्रा करवाई। वापसी में अब्राहम, मोसिस और जीसस से उनकी मुलाकात हुई। उसके बाद गैबरियल और हजरत ने मिलकर सात स्वर्गों की भयानक चढ़ाई आरम्भ की। हर एक स्वर्ग के सिहांसन पर खुदा के दूत का साम्राज्य था। यहूदी धर्म में भी यह मान्यता है कि सात स्वर्गों को पार करने के बाद हजरत खुदा के पास पहुंचे जहां अनन्त प्रकाश का स्रोत था। सेंट पाल बताते हैं कि उनके एक मित्र को जो मसीहा से संबंध रखता था तीसरे स्वर्ग में रोक लिया गया था। जहां उसने ऐसी आवाजें सुनी जिनका वर्णन मनुष्य की भाषा में नहीं किया जा सकता है।

यहूदी धर्म के रबीज महात्मा कहते हैं कि गुप्त विद्या के संसार को पार करने के लिए व्यक्ति को गुरू की दीक्षा की आवश्यकता पड़ती है ताकि वह उसे समय-समय पर रास्ते में आने वाले खतरों के बारे में आगाह कर सके तथा उसकी सुरक्षा कर सके। इस मार्ग में गुरू मंजिल नहीं हैं बल्कि वह भी रास्ते का एक पड़ाव है। साधक जब मंजिल पर पहुंचता है तो वह हर प्रकार के स्वार्थी विचार, स्वरूप

या मनमोहक दश्यों की बलि दे चुका होता है, उसकी सीमित धारणाएं और संस्कार सभी जलकर राख हो चके होते हैं। वह शरीर, प्राण और मन की चेतना की उज्जवलता में स्नान करने लगता है। हर समय प्रकाश का झरना उसके अन्दर बहने लगता है, वह इतना आनन्दित हो जाता है कि परमात्मा की सुन्दरता और प्यार के सामने वह संसार की हर वस्तु को हार जाता है। उसे हर स्थान पर एक ही सार्वभौमिक सत्ता के दर्शन होने लगते हैं। वह कण-कण में परमात्मा व एक ही ईश्वर का अनुभव करने लगता है। उसका जीवन ही ईश्वरमय हो जाता है। अब उसके लिए बाहर की वस्तुएं, नियम और सिद्धांत जो आपस में नफ़रत पैदा करते हैं, व्यर्थ हो जाते हैं। प्यार और करूणा का संदेश मुख्य हो जाता है।

इन तीनों धर्मों (ईसाई, इस्लाम व यहूदी धर्म) में जब भी कोई समस्या उत्पन्न हुई तभी अध्यात्म की गूढ़ विद्या के जानकारों (मिस्टिकस) ने धर्म की सहायता की और धर्म की नींव को मजबूती प्रदान की। रबीज और कबाला सम्प्रदायों ने यहूदी धर्म को, सुहरावर्दी और सूफी सम्प्रदायों ने इस्लाम धर्म को समय-२ पर मजबूती प्रदान की। ईसाई धर्म में भी ईसा मसीह को मसीहा का दर्जा दिलवाने में और ट्रिनिटी के सिद्धांत की व्यापक और सर्वमान्य परिभाषा देने में इन्हीं गुप्त विद्या के जानकारों का विशेष योगदान रहा। जीसस के क्रूस पर चढ़ने के तीन शताब्दी के बाद जब नीसा की परिषद में यह बहस चल रही थी कि क्या ईसा मसीह वास्तव में मसीहा थे, यदि मसीहा थे तो ईश्वर के साम्राज्य में उनकी स्थिति क्या है, वे ईश्वर के समान हैं या उनसे कम, तब एरियस और बिशप इलैक्जेंडर के सहायक एथेनेशियस अपना-२ पक्ष रख रहे थे।



सम्राट कोंस्टेन्टाईन की आज्ञा से यह सब चल रहा था। एरियस जीसस को एक सामान्य व्यक्ति मान रहा था। वह कह रहा था कि जीसस अपनी अपूर्व कुर्बानी के कारण ईश्वर के तुल्य हो गए हैं ताकि हम भी उनके द्वारा सुझाए गए रास्ते पर चल सकें। यदि जीसस ईश्वर की प्रकति के होते तो फिर वे हमारे किस काम के होते, तब हम उनके बताए गए रास्ते पर नहीं चल पाते क्योंकि मनुष्य कभी भी ईश्वर की प्रकति का नहीं बन सकता है। इसलिए जीसस को उनकी कुर्बानी के कारण ही ईश्वर ने उन्हें ईनाम के तौर पर अपने समान दर्जा प्रदान किया है, लोगोस (वर्ड) के रूप में स्थापित किया है।

इसके विपरीत एथेनेशियस कह रहा था कि जीसस हमारी प्रकति का नहीं था बल्कि वह ईश्वर की प्रकति का था, स्वभाव से ही लोगोस का रूप था। उस लोगोस का जिसने सारी सष्टि की रचना की है, जो सष्टि के आरम्भ में भी था और अंत होने के बाद भी रहेगा। यही लोगोस हमारे और सारी रचना के अन्दर मौजूद रहता है ताकि इसकी सहायता लेकर हम भी ईश्वर की प्रकति के बन सकें और ईश्वर के स्वभाव में भागीदार हो सकें।

स्पष्ट है कि एरियस जीसस को एक व्यक्ति (व्यक्तिगत ईश्वर) के रूप में स्थापित करना चाहता था। एक व्यक्ति (जीसस) जो हमारे निकट का और हमारे स्वभाव का व्यक्ति है उसे परमात्मा की मलकियत का स्वामी बनाना चाहता था। इसके विपरीत एथेनेशियस जीसस को ईश्वर के विशाल रूप में स्थापित करना चाहता था जहां जीसस की एक व्यक्ति के रूप में पूजा न हो बल्कि लोगोस का लिबास पहने हुए जीसस (इमपर्सनल गोड) की पूजा हो। उस शब्द (लोगोस या वर्ड) की

पूजा हो जिसने सारी सष्टि की रचना की है और हर व्यक्ति के अन्दर हर समय एक चिंगारी के रूप में विद्यमान रहता है तथा जिसकी कभी मत्यु नहीं होती है। व्यक्ति-जीसस की मत्यु हो सकती है, लेकिन लोगोस-जीसस की मत्यु कभी नहीं हो सकती है। लोगोस-जीसस अमर है जिसने मानवता के कल्याण के लिए मनुष्य के रूप में जीसस का शरीर धारण किया और मत्यु के बाद वापिस अपने वास्तविक रूप में लौट गया तथा लोगोस के रूप में हमेशा हमारे बीच में विद्यमान रहेगा ताकि हम भी ईश्वर की प्रकति के बन सकें। उसके अन्दर समा सकें।

उस समय के जनसाधारण और पढ़े-लिखे समुदाय को एरियस की बातें अधिक जंच रही थी, अपील कर रही थी क्योंकि वह उनके अपने जीसस की बातें कर रहा था। व्यक्ति-जीसस की बातें कर रहा था लेकिन परिषद ने एथेनेशियस की बात को स्वीकार किया क्योंकि उसके मसीहा का आधार विशाल था, सष्टि के आदि से जुड़ा हुआ था। जीसस के इसी रूप को सेंट पाल और सेंट जोन ने स्वीकार किया था। ''आरम्भ में शब्द था, शब्द ईश्वर के साथ था, शब्द ही ईश्वर था तथा इसी शब्द ने सारी सष्टि की रचना की'', परिषद के इस महावाक्य को बाईबल और ईसाई धर्म का आधार माना गया। इसी शब्द जिसे उपनिषद् ने अनहद नाद कहा है को आधार मानकर सुरत-शब्द योग का अभ्यास आरम्भ होता है। यही शब्द राधास्वामी योग की जान है, केन्द्रीय सिद्धांत है। इसी शब्द की खोज साधक लगातार अभ्यास के द्वारा अपने अन्तर में करता है और इसी शब्द के अन्दर से होकर आत्मा परमात्मा के अनन्त, अपार, अखण्ड और अपरिमित रूप में विलीन हो जाती है।



एथेनेशियस का ईश्वर-जीसस और लोगोस-जीसस, व्यक्ति-जीसस नहीं था बल्कि एक मिस्टिक का ईश्वर था जो आलम अल-मिथाल के पार का ईश्वर था। एक सूफी का ईश्वर था, कबीर का और नानक का ईश्वर था, मौलाना रूम, खुसरो, राबिया बसरी, श्री अरविन्द, रविदास, मीरा, सुकरात, रबीज, कबाला संतों और उपनिषदों का ईश्वर था। अनंत प्रेम और महाकरूणा का ईश्वर था। ईश्वर का यह रूप साधारण व्यक्ति की समझ और पहुंच से बाहर का ईश्वर था। यही कारण था कि ईश्वर के इस सिद्धांत ने हमेशा ही ईसाईयत को अन्दर ही अन्दर आन्दोलित रखा। पूर्वी और पश्चिमी चर्च के बीच की खाई को कभी नहीं पाटने दिया। पूर्वी चर्च ने हमेशा एथेनेशियस के मिस्टिक ईश्वर का पक्ष लिया तो पश्चिमी चर्च ने हमेशा एरियस के व्यक्ति-जीसस (परसनल गाड) का पक्ष लिया। जब जब भी बुद्धि ने उभार लिया, तब-तब एरियस का ईश्वर भारी पड़ा और जब-जब कोई मिस्टिक (रहस्यदर्शी) रास्ते में आ गया तो एथेनेशियस के ईश्वर के रूप को उभार मिला लेकिन सुधारवाद और वैज्ञानिक युग का आरम्भ होते ही मिस्टिक युग समाप्त हो गया और एरियस का व्यक्ति-जीसस और भी अधिक व्यक्तिगत हो गया। उसने पूरी तरह से सैमेटिक और एन्थरोपोमारफिक ईश्वर का रूप ले लिया। बाईबल के अक्षरों के भाषायी अर्थ पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। शब्दों और पक्तियों के बीच में छिपे रहस्यमयी अर्थ व संदेश को पढ़ना पाप माना जाने लगा। गुप्त विद्या के ज्ञान या मिस्टिसिज्म को घोर अपराध का दर्जा दिया जाने लगा। एक हाथ में बाईबल और दूसरे हाथ में तलवार और रोटी ले ली गई। अन्ततः इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ बुद्धिजीवियों ने ईश्वर की मौत की घोषणा कर दी।

नीसा की कौंसिल के निर्णय को एरियस और उसके दो बहादुर साथियों ने नहीं माना और उस पर दस्तखत नहीं किए। कोंसिल के निर्णय के बाद भी चर्च के पादरी एरियस के सिद्धांत को बढ़ावा देते गए। एरियस और उसके साथियों ने अपने प्रयत्न से धीरे-२ सम्राट को भी अपने पक्ष में ले लिया। इस दौरान एथेनेशियस को तंग किया गया और पांच बार देश से निकाला गया। एरियस के व्यक्ति-जीसस के सिद्धांत की स्वीकति के साथ ही एक बार फिर ट्रिनिटी के सिद्धांत (पिता, पुत्र व पवित्र आत्मा और उसमें पुत्र की स्थिति) के बारे में प्रश्न उठने लगे। एथेनेशियस के ईश्वरीय सिद्धांत में ये सभी प्रश्न स्वयं ही हल हो जाते हैं।

एंटनी जो मरूस्थल के संत थे और जो ईसाई मोनास्टीसिज्म (आश्रम व्यवस्था) के जनक कहे जाते हैं उन्होंने एथेनेशिसय के सिद्धांत का पक्ष लिया। एंटनी मिश्र के मरूस्थल में अविश्वसनीय संयम का जीवन जीते थे और अपने समाधि मकबरे में बीस साल तक शैतान की ताकतों के साथ लड़ते रहे। जब बीस साल बाद मकबरे से बाहर आए तो कहा जाता है कि उनके शरीर पर बढ़ती उमर का कोई लक्षण नहीं था और जीसस की भांति ही वे लोगोस के अन्दर समा गए थे तथा शैतान से लड़ते हुए उसके निवास स्थान के अन्दर तक चले गए थे। शैतान को हराकर ही वे मकबरे से बाहर आए थे। एथेनेशियस ने ''लाईफ ऑफ एंटनी'' नामक पुस्तक में यह दर्शाया कि कोई भी व्यक्ति तपस्या और ध्यान से लोगोस में समा सकता है और ईश्वर के अखण्ड और लोगोस रूप का दर्शन कर सकता है जो एंटनी ने किया। यह दर्शन केवल ध्यान और अभ्यास के द्वारा किया जा सकता



है। अनुभव की इस जरूरत को दूसरे ईसाई महात्माओं जैसे क्लीमेंट, ओरीजेन, डेनीज आदि ने भी महसूस किया।

अब भी ईसाई विचलित थे कि क्या केवल एक ही ईश्वर है, क्या जीसस भी ईश्वर है? इसके बाद पूर्वी टर्की में कैपेडोसिया की तीन महान विभूतियों ने इन प्रश्नों का उत्तर दिया। इन अध्यात्मवादियों को अध्यात्म के व्यावहारिक ज्ञान का गहरा अनुभव था। इनके जवाब से पूर्वी आर्थोडोक्स चर्च संतुष्ट हो गया लेकिन पश्चिमी चर्च के साथ मतभेद बने ही रहे। पश्चिमी चर्च के लिए आदम का पाप और उसका स्वर्ग से पतन और उस पाप से मुक्ति ही मुख्य मुद्दे बने रहे। पश्चिमी चर्च ने समय-समय पर इस बात पर ही अधिक जोर दिया कि मनुष्य आदम के पाप का नतीजा है और वह कभी भी ईश्वर के समान या ईश्वर का अविभाज्य अंग नहीं बन सकता है। वह कभी भी परमात्मा की तरह पवित्र नहीं हो सकता है। यह पाप आदम कर चुका है अब तो केवल हमें उसका परिणाम भुगतना है और जीसस (व्यक्तिगत ईश्वर) के सामने खड़े होकर हम केवल अपने पापों के लिए पश्चाताप कर सकते हैं। इसके सिवाय पाप से मुक्ति के लिए कोई मार्ग नहीं है। स्वयं को परमात्मा तुल्य कहना या मानना घोर अपराध है। अतः ईसाई धर्म में ऐसा कहने वालों को हमेशा नफ़रत की नजरों से देखा गया और उन्हें दण्ड भी दिया गया। ध्यान या योग क्रियाओं द्वारा ईश्वर की प्राप्ति करना शैतान का कार्य कहा गया और उसकी निन्दा की गई।

पश्चिमी चर्च हमेशा ही मनुष्य के अन्तर्मुखी होने को नकारता रहा है क्योंकि अन्तर्मुखी होने से व्यक्ति अपनी आंखों से

जीसस का आलोकित व अनंत रूप देख सकता था जो चर्च की संस्था के लिए खतरे का सूचक हो सकता था। ईश्वर को स्वयं के अन्दर अनुभव करने से व्यक्ति चर्च की गुलामी से आजाद हो सकता था और ऐसा होने से चर्च अपनी मनमानी करने के लिए ईश्वर के नाम का फरमान जारी नहीं कर सकता था। मनुष्य को अंधविश्वासी और कमजोर बनाकर रखना ही उसका मुख्य मकसद था ताकि धर्म के नाम पर उसका शोषण किया जा सके। आज का वेटिकन चर्च इसी प्रयास का एक हिस्सा है जिसने लोगोस-जीसस और ध्यान व योग को पूरी तरह से नकार दिया है।

कैपेडोसिया के इन तीन महान अध्यात्मवादियों के नाम थे बेसिल, निसा के ग्रेगरी और नाजियंजस के ग्रेगरी। इन्होंने कहा कि सत्य को शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता है, इसे केवल आत्मा (स्पिरिट) की आंखों से ध्यान के द्वारा देखा जा सकता है। एक होता है डोगमा और दूसरा है क्रिगमा। क्रिगमा धर्म का बाहरी स्वरूप है, वह दर्शन है जिसे शब्दों के द्वारा चर्चो में समझाया जा सकता है लेकिन डोगमा धर्म की आन्तरिक आत्मा है जिसको केवल अनुभव किया जा सकता है और प्रतीकों के रूप में केवल उसके बारे में संकेत किया जा सकता है। डोगमा बोलने, समझने और किसी कर्मकाण्ड के द्वारा प्रकट करने की चीज नहीं है। उन्होंने प्लेटो और अरस्तु का उदाहरण देकर ये बातें समझायी और कहा कि स्पिरिट का अनुभव बुद्धि के वश की बात ही नहीं है। ये तीनों पुरूष यूनान के अध्यात्म से प्रभावित थे। पूर्वी आरथोडोक्स चर्च पर यूनान के दार्शनिकों और उनके ज्ञान का प्रभाव देखने को मिलता था। इन्होंने कहा कि धर्म की गूढ़ बातें यदि मूक रहकर समझी जाएं तो बेहतर हैं।



पश्चिमी चर्च धर्म को बोलकर प्रकट करने में अधिक विश्वास रखता था, उसका विषय डोगमा नहीं बल्कि क्रिगमा होता था। निसा के ग्रेगरी ने कहा कि ईश्वर के बारे में कोई भी विचार केवल उसकी एक छाया है, एक झूठी समानता है जो स्वयं ईश्वर का भेद नहीं खोलती है। हमें ईश्वर के बारे में कोई भी धारणा विकसित नहीं करनी चाहिए बल्कि उसमें श्रद्धा पैदा करनी चाहिए। हमारा लक्ष्य हर तरह के ज्ञान को लांघना होना चाहिए जिसका आश्रय मौन हो। यह अनुभव हजरत मोसिस ने सिनाई के पर्वत पर किया था जिसमें वह जब परमात्मा से मिलने गया तो उसे वहां कोई व्यक्ति या ईश्वर दिखाई नहीं दिया बल्कि एक विशाल अंधकार के बादल ने उसे चारों ओर से घेर लिया। इसी अनुभव को भारतीय ऋषि पतंजली ने धर्ममेघ समाधि अर्थात् बादल रूपी धर्म कहा है। स्वामी विवेकानन्द ने इसे क्लाऊड आफ वरच्यू अर्थात् धर्म का बादल कहा है। बेसिल ने सेंट फिलो का उदाहरण देते हुए बताया कि फिलो ने ईश्वर को ओसिया अर्थात् इसेंस (Essence) कहा है जो बुद्धि की समझ से परे है, ईश्वर को केवल उसकी इनर्जिया (बाहरी अभिव्यक्ति) से जाना जा सकता है।

एथेनेशियस ने भी एरियस को यही कहा था कि ईश्वर का सारभूत तत्व (ओसिया) मनुष्य की समझ से बाहर की बात है, उसके केवल बाहरी चेहरे (हाईपोस्टेसिस) का वर्णन किया जा सकता है। किसी भी वस्तु का सारभूत तत्व (इसेंस) वह है जो उस वस्तु के अन्दर समाया हुआ है और उसका बाहरी चेहरा वह है जो बाहर से हमें दिखाई देता है। इसलिए ईश्वर के तीनों रूपों (पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा) के अन्दर एक ही तत्व का निवास है। जब

ईश्वर स्वयं का प्राणियों को ज्ञान करवाना चाहता है तो अपने बाहरी चेहरों की झलक देता है। ईश्वर को कोई भी नाम नहीं दिया जा सकता है, उसके तीन चेहरे हैं; पिता जो अगम व अपार प्रकाश का भण्डार है, पुत्र जो लोगोस (वर्ड) का रूप है जिससे सारी सष्टि की रचना होती है और पवित्र आत्मा (होली स्पिरिट) सष्टि की अन्तरतम शक्ति है। सारी सष्टि का आदि स्रोत पिता है, पुत्र के अन्दर से यह सष्टि बाहर की तरफ बहती है, प्रकट रूप धारण करती है और पवित्र आत्मा के द्वारा इसकी शक्ति बरकरार रहती है। ट्रिनिटी के इसी सिद्धांत को श्री अरविन्द सुपरमाईंड (अतिमन), ओवरमाईंड (उर्ध्वमन) और स्पिरिट (चेतना शक्ति) कहकर वर्णन करते हैं। आध्यात्मिक अनुभव जब इतना परिपक्व हो जाता है कि हम हर समय अपने अन्दर, ऊपर और चारों तरफ ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करते हैं तो यह उपस्थिति पवित्र आत्मा की अभिव्यक्ति है। यही स्पिरिट जब पदार्थ की अज्ञानता में उतर जाती है तो अपरा शक्ति कहलाती है और जब उर्ध्वमन व अतिमन का रूप बन जाती है तो इसे पराशक्ति कहा जाता है। कैपेडोसिया के इन संतों का अनुभव प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक अनुभव से बहुत अधिक मेल खाता है। ट्रिनिटी के अनुभव का सार बताते हुए नाजियंजस के ग्रेगरी कहते हैंः जब मैं एक के अनुभव में उतरता हूं तो तीनों के प्रकाश से भर जाता हूं, और जब मैं तीनों में अन्तर करता हूं तो वापिस जाकर फिर एक में समा जाता हूं और तब तीनों में से किसी एक में जीता हूं तो भी तीनों रूपों को उस एक रूप में समाया हुआ पाता हूं तथा मेरी आंखें और शरीर प्रकाश से भर जाते हैं।



अठारहवीं शताब्दी में ईश्वर का सारभूत तत्व लुप्त हो गया। ईश्वर को समझने के लिए बाईबल का भाषायी अर्थ मुख्य हो गया, शब्दों का गूढ़ अर्थ निष्प्रयोजन हो गया। पूर्वी चर्च के डोगमा (इसेंस) की मत्यु हो गई, डोगमा की मत्यु होते ही पश्चिमी चर्च का प्रभुत्व हो गया। ध्यान और मिस्टिसिज्म को अवैध करार दे दिया गया। ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाण और बुद्धि से सिद्ध करने की होड़ लग गई, उसे बुद्धि और रीजनिंग से पकड़ने का प्रयत्न होने लगा। परिणाम स्वरूप उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में बहुत से बुद्धिजीवियों ने ईश्वर के अस्तित्व को मानने से इंकार कर दिया।

ईसाई धर्म के अधिकतर रहस्यवादियों ने कहा कि ईश्वर के गहरे रूप या सारभूत तत्व को देखा नहीं जा सकता है, वह अंधकार की प्रकति का है। भारतीय दर्शन सांख्य और योग दर्शन में इसे मूल प्रकति कहा गया है जो सत, रज और तम के मेल से बनी हुई है। मूल प्रकति के अन्दर ये तीनों तत्व बराबर मात्रा में रहते हैं, इसलिए यहां आकर प्रकति के गुणों की सारी गति थम जाती है। कोई भी गति न होने के कारण यह अंधकार रूप है। यही मूल प्रकति जब रचना करती है तो इसके तीनों तत्व असमान रूप से घटने और बढ़ने लगते हैं जिससे इसमें गति पैदा हो जाती है। जब हम ध्यान का अभ्यास करते हैं तो सत्त तत्व प्रकाश के रूप में तीसरे नेत्र के स्थान पर दिखाई देने लगता है। इसलिए प्रकति के केवल बाहरी रूप को देखा जा सकता है मूल प्रकति को नहीं क्योंकि वह अंधकार रूप है। योगी जब प्रकति के इस मूल रूप का साक्षात्कार कर लेता है तो पुरूष अर्थात् आत्मा को प्रकति के गुणों का ज्ञान हो जाता है और आत्मा उसके बंधन से मुक्त

हो जाती है। ध्यान के इस अनुभव को उन्होंने असम्प्रज्ञात, निर्विकल्प या निर्बीज समाधि कह कर वर्णन किया है। अद्वैत दर्शन भी निवति की इसी दशा को निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति कहता है जो विवेकख्याति प्राप्ति का परिणाम है।

निसा के ग्रेगरी ने जहां ईश्वर के इस अनुभव को अंधकार का बादल (क्लाऊड ऑफ डार्कनेस) कहा है और जिसे हजरत मोसिस ने भी पर्वत सिनाई के ऊपर अनुभव किया था, वहीं छठी शताब्दी के यूनानी ईसाई डेनिज ने भी इसे अंधकार का गहरा बादल कहा है जिसके अन्दर चले जाने के बाद कुछ भी दिखाई नहीं देता है। इसके बाद पोप ग्रेगरी महान ने भी इसे सिद्ध करते हुए कहा है कि ईश्वर ने मनुष्य से सारा ज्ञान अंधकार या धुंध के विशाल बादल के अन्दर छिपा कर रखा है और वह स्वयं भी इस अभेदनीय बादल के अन्दर छिपा रहता है। मैग्जीमस और तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के रहस्यवादी मिस्टर इकहार्ट ने ईश्वर को डार्कनेस (अंधकार) कहकर पुकारा है, ऐसा अंधकार जिसे प्रकाश की अनुपस्थिति नहीं कहा जा सकता है बल्कि इसके अन्दर एक अनोखी चमक होती है। श्री अरविन्द ने भी निर्विकल्प समाधि को ऐसे अंधकार की अनुभूति कहा है जिसमें जाकर प्रकाश इतना सघन और घना हो जाता है कि इसकी गति रूक जाती है और अंधकार का आभास होता है। इसे देखा नहीं जा सकता है। इसे उन्होंने अतिचेतन प्रकाश की उज्जवलता (लूमीनोसिटी ऑफ सुपरकोंसियंट लाईट) कहकर संबोधन किया है। महात्मा बुद्ध ने इसे दीपक का बुझना कहा है। दूसरे ईसाई संतों ने इसे आत्मा की काली रात्रि (डार्क नाईट ऑफ सोल) कहकर वर्णन किया है। बोहमें ने इसे अन्धा रहस्य (डार्क सिकरेट) कहा है।



इन रहस्यवादियों ने कहा है कि जिसे देखा जा सकता है वह ईश्वर का बाहरी चेहरा है, उसका भीतरी स्वरूप नहीं है। कुछ ईसाई महात्माओं ने ईश्वर के प्रकाश रूप का वर्णन कुछ इस तरह से किया है जैसे दसवीं शताब्दी के सीमिओन कहते हैं:

**ओ प्रकाश तेरा कोई नाम नहीं**
**क्योंकि तू अनामी है,**
**ओ प्रकाश तेरे अनेक नाम हैं**
**क्योंकि तू हर चीज में दिव्यमान है,**
**मुझे आश्चर्य है कि तू इस घास**
**के साथ कैसे घुलमिल जाता है?**
**जबकि साथ ही तूं सदा स्थिर**
**और अगम्य भी है,**
**ये बता मुझे कि तू इस घास को अपने**
**अन्दर कैसे सुरक्षित रखता है?**

सिमिओन ने स्पष्ट किया कि यह सारी सष्टि ही बीज रूप में ईश्वर के प्रकाश में सुरक्षित रहती है। यह प्रकाश हर वस्तु के अन्दर उसके लगातार होने वाले बदलाव के अन्दर भी विराजमान रहता है और ऐसी सत्ता भी है जो सदा स्थिर रहती है, अगम्य और अगोचर है। सेंट पाल और सेंट जोन ने ईसा मसीह के साथ पूर्ण आत्मिक एकता प्राप्त करने की बात कही है। वे कहते हैं कि यह एकता देह में आए जीसस के साथ नहीं बल्कि उनके आलोकित व अलौकिक रूप के साथ होनी चाहिए जो आत्मा के साथ एक है और अभिन्न है। सेंट जोन कहते हैं कि जो आत्माएं जीसस के साथ एकता स्थापित

कर लेती हैं वे ईश्वर (पिता) के साथ भी अभिन्न रूप से एक हो जाती हैं। सेंट आगस्टिन ईश्वर के प्रकाश को अपनी आत्मा की रूपान्तरण करने वाली शक्ति कहते हैं। सेंट बरनार्ड ने अपनी आत्मा के अन्दर ईश्वर के प्रकाश का अवतरण अनुभव किया जिसने उन्हें ईश्वरमय बना दिया। सेंट बिंजन ने ईश्वर को जीवित प्रकाश कहकर पुकारा। मरूस्थल के सेंट जोन केशियन कहते हैं कि लगातार ध्यान करने से आत्मा ईश्वर के साथ एक हो जाती है। जार्ज फोक्स ने कहा कि सारे धर्मशास्त्र हमारे अन्दर के प्रकाश से ही पैदा होते हैं, हमारे अन्दर का प्रकाश ही हर ज्ञान का स्रोत है। यह विचार रहस्यवादियों और चर्च के बीच काफी समय तक खींचतान का कारण बना रहा। क्वेकर्स मत के उपदेशक जार्ज फोक्स, जेम्स नेलर और उनके शिष्यों ने अपने प्रचार में कहा कि सभी आदमी और औरतें सीधे तौर पर ईश्वर से संबंध स्थापित कर सकते हैं। हर एक मनुष्य के अन्दर प्रकाश का स्रोत है, इस स्रोत की खोज कोई भी ऊँची-नीची जाति का व्यक्ति बिना भेदभाव के बराबर रूप से कर सकता है, उसका पोषण कर सकता है और यहीं पर रहते हुए मुक्ति प्राप्त कर सकता है। डायोनिसियस कहते हैं कि ईश्वर जो अतिचेतन अंधकार में वास करता है उसके चारों और प्रकाश का घेरा है। हिन्दू मनीषियों ने इसे ज्योति-स्वरूप ब्रह्म कहा है। परमज्योति की प्राप्ति और सम्प्रज्ञात, सविकल्प व सबीज समाधि की सिद्धि कहा है।

इस्लाम में अल्लाह को नूर (प्रकाश) कहा है। हजरत मुहम्मद अल्लाह के नूर से पैदा हुए और हजरत के नूर से इमाम, मौलवी और शेख पैदा होते हैं। कुरान में कहा गया है कि स्वर्ग और पथ्वी अल्लाह के प्रकाश से हैं (24:35)। हजरत मुहम्मद ने अपने आखरी दर्शन में



अल्लाह को नूर के रूप में पाया (53:13-17)। यूनानी महात्माओं की तरह इस्लाम के सुहरावर्दी मत में परमात्मा को प्रकाश का अनुभव कहा गया है। इसमें गुरू को शेख अल-इसराक कहा गया है अर्थात् गुरू वह है जो अल्लाह के नूर से भरपूर है। इस नूर का अनुभव करने के लिए कुत्ब (समय का संत) की आवश्यकता होती है। सुहरावर्दी के दर्शन को इसराकी दर्शन भी कहा जाता है। ईसराक का अर्थ है नूर। नूर सर्वव्याप्त है, यहां की हर वस्तु नूर की पैदायश है। अल्लाह अपने पाक रूप में नूरों का नूर है। नीचे का हर मण्डल जो प्रकाशवान है, ऊपर के प्रकाश के मण्डल की उत्पत्ति है। नीचे का कम प्रकाश का मण्डल अपने से ऊपर वाले व अधिक प्रकाश के मण्डल पर आधारित है। इस प्रकार नीचे आते-आते अधिक प्रकाश से कम प्रकाश के मण्डल बनते चले गए और एक स्थान पर आकर एक प्रकाश के मण्डल के द्वारा दूसरे प्रकाश के मण्डल को ढ़कने के कारण छाया का मण्डल अस्तित्व में आया जिससे संसार की उत्पत्ति हुई और अंधकार का वजूद कायम हुआ। व्यक्ति या शेख के अन्दर जब प्रकाश बहुत अधिक बढ़ जाता है तो उसके अन्दर विवेक (विसडम) का जन्म होता है, इस विवेक की उत्पत्ति को हिकमत अल-इसराक (विसडम ऑफ इलूमिनेशन) कहा जाता है। यहूदी धर्म के कबाला सम्प्रदाय में भी सष्टि की उत्पत्ति प्रकाश से मानी गई है। इस मत के अनुसार जब आरम्भ में ईश्वर की इच्छा सष्टि की रचना करने की हुई तो उसके दिव्य प्रभामण्डल (औरा) से ज्वाला की तरह एक किरण पुंज निकला जो धुंए जैसा था जिसका रंग न सफेद था न काला, न ही लाल न हरा और न ही किसी और रंग से उसकी समानता को आंका जा सकता है। इस किरण पुंज से सष्टि की रचना हुई।

कुछ मिस्टिक अनुभव की हर सीमा को पार कर गए। छठी शताब्दी का डेनीज जो यूनानी ईसाई था और कैपेडोसियन फादर्स का उतराधिकारी था उसने अपना अनुभव अपने नाम की पहचान छिपाते हुए 'द डिवाइन नेम्स' में लिखा ताकि उसे किसी कठिनाई का सामना न करना पड़े। उसने अपने प्रकाशन (द डिवाईन नेम्स) में पादरी बेसिल की तरह डोगमा और क्रिगमा के अन्तर को बहुत गम्भीरता के साथ लिया। उसने कहा कि ये बातें साधारण अनुभव की बातें नहीं हैं, इन्हें केवल वह व्यक्ति समझ सकता है जिसने दीक्षा ली है और जो किसी भी विचार, धारणा व मानसिक दावपेंच से बाहर निकल गया है। ईश्वर का कोई भी रूप नहीं बनाया जा सकता और न ही उस अनुभव को किसी भाषा या बौद्धिक तरीके से वर्णन किया जा सकता है। शास्त्रों का अध्ययन और पठन-पाठन जैसे तरीके ईश्वर के अनुभव का रहस्य पाने में असमर्थ हैं। ईश्वर को ईश्वर या पुरूषोतम (सुपरीम बीईंग) कहना भी बेईमानी है क्योंकि वह तो नाकुछ (नथिंग) अर्थात् शुन्य का अनुभव है, उसे कोई भी नाम नहीं दिया जा सकता है। यदि हम वाकई ईश्वर को समझना चाहते हैं तो हमें बुद्धि के हर ज्ञान और समझ को नकारना होगा। हमें कहना होगा कि वह ईश्वर भी है और अनिश्वर भी है, अच्छा भी है और बुरा भी वही है, ज्ञान भी वही है और अज्ञान भी वही है। हमने ईश्वर के बारे में जितनी भी धारणाएं बनाई हैं, उन्हें पीछे छोड़ना होगा। हमें अपनी बुद्धि की हर सोच पर लगाम लगानी होगी ताकि वह ईश्वर के रंग-रूप के बारे में कोई कयास न लगाए, धारणा विकसित न करे। ऐसा करने के बाद ही हमें थेरिया या डोगमा अर्थात् ईश्वर के सारभूत तत्व का ज्ञान हो सकता है और हम ईश्वर के साथ एक हो सकते हैं तथा मोसिस के माऊंट सिनाई के



अनुभव का साक्षात्कार कर सकते हैं। डेनिज ने महात्मा बुद्ध के अनुभव के अनुरूप बातें कही लेकिन बुद्ध से भी आगे जाकर उपनिषद् व गीता के अनुभव की सिद्धि करते हुए कहा कि ईश्वर इस दष्टिगोचर सष्टि की भीतरी आत्मा है जो पूरी तरह से सांसारिक भी है और किसी भी गुण या आकार से परे निर्गुण और निराकार प्रज्ञा भी है जिसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता है। डेनीज का यह अनुभव पूरी तरह से भारतीय मनीषियों का अनुभव है जो उन्होंने लगभग दस शताब्दी पहले उपनिषदों में लिपिबद्ध कर दिया था। तीसरी शताब्दी के मिस्टिक प्लोटीनस ने भी यूनान और भारतीय ऋषियों के अनुभव के समान बातें कही हैं। प्लोटीनस आध्यात्मिक ज्ञान सीखने के लिए भारत आना चाहता था लेकिन किसी कारण से उसका यह सपना पूरा न हो सका। यही भारतीय ज्ञान और अनुभव पाईथागोरस के माध्यम से यूनान में गया और फिर सुकरात, प्लेटो व अन्य स्टोइक महात्माओं ने इसका अनुसरण किया।

तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी के यूरोपियन मिस्टिक मीस्टर इकाहर्ट (1260-1327) ने कहा कि ईश्वर को जानने के लिए बुद्धि ज्ञान पर्याप्त नहीं है, यह अनुभव इन्द्रियातीत है और वह हमारे द्वारा बनाए गए किसी भी सांचे में माफिक नहीं बैठ सकता है। उसने भी कहा कि ईश्वर 'ना-कुछ' का अनुभव है। पिता पुत्र (जीसस) के साथ मनुष्य की आत्मा के अन्दर जन्म लेता है, विरजिन मेरी के गर्भ से नहीं। इकाहर्ट यह भी कहते हैं कि ईश्वर को ईश्वर कहना भी ईश्वर का अपमान है इसलिए हमें ईश्वर की खातिर स्वयं ईश्वर से और उसकी सभी धारणाओं से मुक्ति लेनी होगी, तभी जाकर हमें उसके साथ एकता का अनुभव होगा और उसके आनन्द में हम सहभागी बन

सकेंगे। उसने कहा कि ईश्वर का अस्तित्व मेरा अपना अस्तित्व होना चाहिए और ईश्वर का होना मेरा अपना होना चाहिए तभी हम ईश्वर के साम्राज्य के अभिन्न और अविभाज्य अंग बन सकते हैं। उपनिषद् इस अनुभव को अहम् ब्रह्मास्मि, अयं आत्मा ब्रह्म, तत्वमसि, सोहम् आदि महावाक्यों के द्वारा सिद्ध करता है। इकाहर्ट के आत्म-विद्या के इस गूढ़ सिद्धांत से जर्मनी के सारे पादरी नाराज हो गए और उन्हें इसके लिए अपराधी ठहरा दिया गया तथा कष्ट दिए गए।

सत्रहवीं शताब्दी के यहूदी दार्शनिक बरूच स्पाइनोजा (1632-77) वैज्ञानिक सोच लेकर और भी आगे बढ़ गए। उन्होंने अनसेल्म और डेसकार्टिस की तरह कहा कि हम यह सोच भी नहीं सकते हैं कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है। हमारा यह सोचना ही सिद्ध करता है कि ईश्वर की सत्ता है। यदि विचार है तो यह कैसे हो सकता है कि विचारक न हो। सर्वश्रेष्ठ विचारक ही छोटे विचारों का जनक हो सकता है जो सच्चाई के विचारों को तरासने और स्टीक निर्णय लेने में हमारी मदद करता है। फ्रांस के डेसकार्टिस कहते हैं कि मेरा विचारना ही मेरे अस्तित्व को सिद्ध करता है (आई थींक देयर फोर आई अम)। ग्यारहवीं शताब्दी के संत अनसेल्म भी यही कहते हैं कि व्यक्ति का यह सोचना कि 'ईश्वर नहीं है' ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करता है। स्पाइनोजा ने कहा कि सत्यता को दो भागों में नहीं बांटा जा सकता है कि यह ईश्वर है और यह अनीश्वर (शैतान) है दोनों को मिलाकर ही ईश्वर की संज्ञा दी जा सकती है। स्पाइनोजा नए युग की नास्तिक-आस्तिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके बाद ऐसा युग आया जब ऐसे ईश्वर के अस्तित्व को नकार दिया गया जो बुद्धि के तर्क पर खरा नहीं उतरता हो और जो निर्दयी तथा जीसस की तरह



या जीसस के ईश्वर की तरह कमजोर हो और स्वयं को भी या अपने प्रथम पुत्र की रक्षा न कर सके। स्पाइनोजा ने कहा कि ईश्वर एक नियम है जो छोटे स्तर के सभी नियमों का जोड़ है। यही नियम सारी सष्टि को चलाता है। उसके इन विचारों से सारे यहूदी धार्मिक समाज में हलचल मच गई और चौबीस वर्ष की आयु में ही उसे सिनागोग (यहूदियों का पूजा-स्थान) से बाहर फेंक दिया गया और धर्म से निष्कासित कर दिया गया। सिनागोग में उसके लिए लोगों द्वारा यह प्रार्थना की गई : ईश्वर तुझे दिन और रात सोते-जागते, अन्दर आते और बाहर जाते हर समय और हर स्थान पर नरकों के दुःख में सड़ाए, तुझ पर खुदा का कहर बरसे। तुझे ईश्वर कभी माफ न करे। ईश्वर के क्रोध की अग्नि तुझे हमेशा जलाती रहे। ईश्वर के कानून की किताब में लिखे सारे कहर तुझ पर टूट पड़ें और आसमान के नीचे से तेरा नाम सदा-सदा के लिए मिट जाए (ए हिस्ट्री ऑफ द ज्यूज)। स्पाइनोजा को कुछ लोगों के द्वारा धर्म को आधुनिकता प्रदान करने के लिए महानायक कहा जाता है और उसके द्वारा दिए गए 'धर्म-निरपेक्ष मुक्ति' के मार्ग का अनुसरण किया जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी के हिगल ने डायलेक्टिक मैथड के नाम से अपना अलग दर्शन (थीसेस-एंटीथीसेस-सिन्थेसिस) विकसित किया। जिसे बाद में कार्ल मार्क्स ने भी साम्यवाद की व्याख्या करने के लिए अपनाया। हिगल कहते हैं कि यहूदी धर्म सबसे मलिन धर्म है ~~क्योंकि इसने आरम्भ में ही~~ ईश्वर के बारे में गलत धारणा स्थापित की। ईश्वर के अत्याचारी, आक्रमणकारी और निर्दयी रूप को लोगों के सामने उभारा। जीसस ने लोगों को ईश्वर के बारे में इस धारणा से छुटकारा दिलाने का प्रयत्न किया लेकिन जीसस के जाने के बाद

ईसाई धर्म ने भी उसी मार्ग को अपना लिया और ईश्वर की वही तस्वीर प्रस्तुत की। हीगल का विचार सही प्रतीत होता है क्योंकि ईसाई, इस्लाम और यहूदी तीनों धर्मों की उत्पत्ति एक ही स्त्रोत से है और तीनों में ही सहनशीलता की कमी रही है लेकिन हीगल का यही विचार आगे चलकर यहूदियों की मौत का कारण बना जब हिटलर ने लाखों यहूदियों को उनके जीसस के प्रति कत्य का फल देने के लिए तड़फा-तड़फा कर मार डाला। उन्हें जहरीली गैस के चैम्बरस में फेंक दिया गया। उन्हें ढूंढ-ढूंढ कर मौत की सजा दी गई।

आत्मा-विद्या या गूढ़ रहस्य से संबंधित जितने भी धर्म या दर्शन हुए हैं वे सभी मनुष्य को विशालता की तरफ ले जाते हैं। ईश्वर के अस्तित्व को किसी एक व्यक्ति के आकार या सीमितताओं के अन्दर नहीं देखते बल्कि उसे कण-कण में समाया हुआ पाते हैं और अपने अन्तिम अनुभव में यही पाते हैं कि मनुष्य भी आत्मिक रूप से ईश्वर का अभिन्न अंग है, सनातन अंश है। किसी ने ईश्वर को प्रकाश रूप में अनुभव किया है, किसी ने प्रकाश के अन्दर से होते हुए एक असीम गहराई में जाकर उसके आनन्द को अनुभव किया है जहां केवल शान्ति है, मौन है, शुन्य है, कोई गति नहीं है, अंधकार और सुषुप्ति के अन्दर की निश्चलता है, अनन्त आत्मिक व मानसिक स्थिरता है और जिसकी थाह पाना असम्भव है। किसी-२ ने ईश्वर के और भी गहरे रूप को अनुभव किया है जहां सुषुप्ति के गहन शून्य व अंधकार में भी ईश्वर के मौन की आवाज गूंजती है। जब आंखों से उसका रूप ओझल हो जाता है तो उसका ब्रह्मण्डीय संगीत शरीर और मन के रोम-रोम को आनन्द से तर कर जाता है जिसे कोई शब्द कहता है, कोई लोगोस, नाद, अनहद, उद्‌गीत, वाणी, अकथकथा,



कलमा, आवाजे-मुस्तकीन आदि नामों से पुकारता है। हजरत मुहम्मद कहते हैं कि कभी-कभी कुरान की आयतें घंटे की आवाज में से उतरकर आई जो मेरे लिए सबसे कठिन अनुभव रहा। यहूदी धर्म के रबीज सम्प्रदाय में भी घंटे की आवाज का वर्णन मिलता है, इसके साथ-२ ऐसी आवाज जो हवा के तेज चलने से पैदा होती है सुनाई देती है। कई ईसाई महात्माओं और अनेक इस्लाम व भारतीय ऋषियों तथा संतों ने भी कई प्रकार की आवाजों और ईश्वरीय संगीत का वर्णन किया है। किसी-किसी ने महात्मा बुद्ध की तरह कहा है कि अध्यात्म के अन्तिम अनुभव को कोई भी नाम देना बेमानी है। वह ईश्वर और अनीश्वर दोनों से परे का अनुभव है उसे किसी भी सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। इस अनुभव का खतरा यह है कि यह अपने अन्तिम पड़ाव में नास्तिकता की तरफ जा सकता है।

यदि संसार में वास्तविक शांति को स्थापित करना है तो हर धर्म व इंसान को व्यक्तिगत ईश्वर में आस्था से बाहर निकलना होगा। विशेषकर ईसाई धर्म में जीसस के व्यक्तिगत रूप की अधिक पूजा की जाती है, जिसके परिणाम भी अधिक सुखद नहीं रहे हैं। इस्लाम में अल्लाह का कोई व्यक्तिगत रूप नहीं है लेकिन ईसाई धर्म की तरह इस्लाम में भी कुरान और हजरत के उपदेश को ही सर्वोपरि माना गया है। इससे बाहर खुदा के अनुभव या दर्शन की कोई संभावना नहीं है। असीमित के अनुभव को सीमित दीवारों में कैद कर दिया गया है जिसे शब्दों और मनुष्य के अन्दर से निकले हुए ज्ञान से तोला जाता है जबकि ईश्वर की एश्वर्यता को समझने के लिए मनुष्य की बुद्धि और ज्ञान बहुत ही अल्प और शुन्य के बराबर हैं। मनुष्य को जितना ज्ञान होता है वह उसी के अनुसार परमात्मा के रूप की कल्पना कर सकता

है। वह अपनी बुद्धि की सीमाओं से बाहर जाकर भला कैसे सोच सकता है। असीम के बारे में सीमाबद्ध व्यक्ति कैसे अनुमान लगा सकता है, यह सम्भव नहीं है।

परमात्मा के रूप के बारे में कौन व्यक्ति क्या सोच सकता है इसे जलालूदीन रूमी अपनी चुनी हुई कहानियों में इस प्रकार बताते हैंः एक दिन हजरत मोसिस ने पथ्वी से एक आवाज आती हुई सुनाई दी। वह आवाज एक गढ़रिए की थी जो आंखें बंद करके तल्लीन होकर खुदा से प्रार्थना कर रहा था कि हे खुदा! मैं तेरी सहायता करना चाहता हूं। तेरे कपड़े बहुत गन्दे होंगे, मैं उन्हें धोकर तुम्हें पहनाना चाहता हूं। तेरे पैरों को तेरे सोने से पहले धोना चाहता हूं ताकि तूं सुखपूर्वक सो सके। मैं तुझसे प्यार करना चाहता हूं, न जाने तुझे कोई प्यार करता भी है या नहीं आदि-आदि बातें कहकर वह अपनी भावनाएं व्यक्त कर रहा था। हजरत मोसिस उसकी मूर्खता पर हैरान हुए और उसके पास जाकर उसे खुदा के प्रति उसके गन्दे व्यवहार और मूर्खता का अहसास करवाया। हजरत ने कहा कि तुम उस खुदा के साथ ऐसी बातें कर रहे हो जिसने सारी पथ्वी और सारे स्वर्गों की रचना की है, वह तुम्हारे संबंधी नहीं हैं जिसे ऐसी बातें कही जाएं। यह सुनकर गढ़रिया पश्चाताप से भर गया और निराश होकर विरान मरूस्थल में चला गया। खुदा ने इस बात पर मोसिस को बहुत डांटा और कहा कि यह तुमने अच्छा नहीं किया। मुझे किसी के शब्दों से कोई मतलब नहीं है, मुझे तो केवल प्यार और तड़फ चाहिए। उसके दिल में कितना प्यार था वह तुझे दिखाई नहीं दिया, तुझे उसके बाहरी शब्द ही सुनाई दिए।

इस कहानी में दो संदेश छिपे हुए हैं। एक यह कि हर व्यक्ति अपने ईश्वर की कल्पना अपनी बुद्धि के अनुसार ही करता है उसके रूप को



अपने ज्ञान के अनुसार स्थिर करता है। एक छोटी बच्ची से किसी ने पूछा कि यदि भगवान तेरे पास आ जाएं तो तुम सबसे पहले क्या करोगी? उस बच्ची ने एक दम जवाब दिया कि मैं उसे खाने के लिए स्वाद सी मिट्टी लाकर दूंगी अर्थात् जैसा जिसका स्वाद है, जैसा जिसका स्वभाव है, जितना जिसका ज्ञान है वह उसी के अनुसार अपने ईश्वर के रूप को स्थिर कर लेता है और उसी के अनुसार जीवन में व्यवहार करने लगता है। दूसरा गूढ़ संदेश यह है कि ईश्वर को किसी का ज्ञान नहीं बल्कि प्रेम और अपने प्रति विरह की तड़फ चाहिए। ज्ञान हर व्यक्ति व हर धर्म के अन्दर भिन्न-२ हो सकता है लेकिन प्रेम की आत्मा हमेशा एक ही रहती है। ईश्वर हर व्यक्ति के हृदय में रहता है और उसकी विरासत प्रेम है, इसलिए सूफी संत बुल्लेशाह कहते हैंः

**मन्दिर ढ़ाहदे मस्जिद ढ़ाहदे,**
**ढ़ाहदे जो कुछ ढ़हंदा ए।**
**इक दिल किसी दा ना ढ़ाहवीं**
**रब दिलां विच रहंदा ए।।**

प्रेम इंसानियत की सबसे बड़ी दौलत है। जिस दिन ईश्वर को प्रेम के रूप में स्थिर कर लिया जाएगा उस दिन मनुष्य प्यार और अमन के साथ रह सकेगा। गीता, बाईबल और कुरान के मत पन्नों में बैठा हुआ मत ईश्वर लुप्त हो जाएगा। ईसा मसीह के द्वारा कहा गया जीवित ईश्वर (लीविंग गोड) जो मनुष्य के हृदय के अन्दर सो रहा है वह जागत हो जाएगा और अपने प्यार की दौलत इंसान के ऊपर कुर्बान कर देगा। ईसा मसीह कहते हैं कि ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है। इसलिए उसे मन्दिर, मस्जिद, चर्च या गुरूद्वारे में ढूंढने की आवश्यकता नहीं है। रफी सौदा कहते हैंः

**काबा अगरचे टूटा तो क्या जाएगा।**

**ये कसर-ए-दिल नहीं के बनाया न जाएगा।**

आजकल के महजब का व्यवहार देखकर किसी ने कहा है कि मजहब के नाम पर लड़ना हमाकत (मजाक) है और हमाकत के नाम पर लड़ना मजहब है।

धर्म के नाम पर आपस की यह लड़ाई चलती ही रहेगी जब तक हम व्यक्तिगत ईश्वर या अपनी बुद्धि के सांचे में बसाए गए ईश्वर को तिलांजलि नहीं दे देते हैं और उस ईश्वर की पूजा नहीं करते हैं जो कण-कण में समाया हुआ है और रोम-रोम को अपने प्यार से सींच रहा है। वह ईश्वर किसी व्यक्ति के रूप का ईश्वर नहीं है बल्कि उसका जन्म आत्मा के अन्दर होता है जिसे ईसाई संतों ने विरजिन (कुंवारी) मेरी कहा है जो अपने आलोकित रूप में निष्पाप है, उसके ऊपर कोई मैल नहीं है और ऐसी शुद्ध आत्मा के अन्दर ज्ञान रूपी प्रकाश का जन्म जीसस का जन्म है लेकिन यह कहकर कि जीसस कुंवारी मेरी के पुत्र हैं हमने अपने पाप (सैक्स या काम) को मां मेरी के ऊपर आरोपित कर दिया है। काम के साथ अपनी लड़ाई को धर्म का चोला पहनाकर अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए उसका प्रयोग कर रहे हैं और अंधविश्वास फैलाकर लोगों का शोषण कर रहे हैं। सैक्स यदि इसका दुरूपयोग किया जाए तो पाप है और यदि इसकी शक्ति का उपयोग किया जाए तो यही मनुष्य के लिए वरदान बन जाता है।

व्यक्तिगत ईश्वर की उत्पत्ति हमारी भावनाओं और विचारों की उत्पत्ति है। यह आलम-अल-मिथाल की पैदायश है। ईसाई, इस्लाम और यहूदी तीनों ही धर्मों में व्यक्तिगत ईश्वर या व्यक्तिगत शास्त्र या व्यक्तिगत पूजा-विधि की मान्यता रही है। हिन्दू धर्म भी इससे अछूता



नहीं है लेकिन हिन्दू धर्म में व्यक्ति स्वतंत्र होकर दूसरी विचारधारा को अपना सकता है। वह स्वयं की विचारधारा को जन्म दे सकता है। इससे स्पष्ट है कि आत्मिक मुक्ति व स्वतंत्रता के लिए यह धर्म बहुत ही अनुकूल वातावरण प्रदान करता है। फिर भी हिन्दू शास्त्रों का आत्मिक ज्ञान व्यक्तिगत ईश्वर नहीं है बल्कि ऐसा ईश्वर है जो अपने परारूप में हर प्रकार से निर्लेप है, निर्गुण और निराकार है परन्तु फिर भी अपरा रूप में आकर सष्टि के हर रूप और हर गुण का स्वामी है। वह विराट रूप में आकर सारे स्थूल ब्रह्माण्ड की रचना करता है, हिरण्यगर्भ रूप में सारी सूक्ष्म से सूक्ष्म रचना को धारण करता है जहां पर आलम-अल-मिथाल की सारी मायावी शक्तियां अटखेलियां करती हैं, तपस्वियों और ऋषियों की रिद्धि-सिद्धियां और हर प्रकार के खजाने (निधि) भरे पड़े हैं। यह मानसिक संसार है जिसमें सारे स्वर्ग-नरक समाए हुए हैं। सारे देवी-देवता और फरीश्ते इसी सूक्ष्म रचना का हिस्सा हैं जो साधनालीन व्यक्ति को भ्रमित करते हैं, उसकी कमियों पर चोट करते हैं। यदि व्यक्ति कामी है तो उसके समक्ष सुन्दर-सुन्दर परियाँ पेश हो जाती हैं, यदि वह लालची है तो उसके सामने दुनियां के खजाने खुलने लगते हैं और स्थूल रूप में उसकी इच्छाओं की पूर्ति होने लगती है। यदि व्यक्ति आक्रामक है तो कोई युद्धक शक्ति उसकी सहायता करने लगती है और यदि सतोगुणी है तो कोई सात्विक देवता या फरिश्ता सतोगुण का लालच देकर उसे भ्रमित कर देता है। यहीं पर कल्पवक्ष और कामधेनू गाय हैं जो व्यक्ति की हर इच्छा की पूर्ति कर देते हैं।

ईश्वर के इस रूप को अक्षर-ब्रह्म या अक्षर-पुरूष भी कहा गया है क्योंकि यह पुरूष सष्टि के सारे सूक्ष्म ज्ञान का स्वामी है।

हिरण्यगर्भ से ऊपर ईश्वर का अव्यक्त रूप है, सुषुप्ति का ईश्वर जो भयानक अंधकारों का स्वामी है। सारी स्थूल और सूक्षम सष्टि का बीज यहां पर सुषुप्त अवस्था में पड़ा रहता है। कारण रूप में विद्यमान रहता है। जिस प्रकाश सुषुप्ति में जाने के बाद भी व्यक्ति स्वप्न और जागति में वापिस आ जाता है और ताजगी के साथ अपना कार्य करने लगता है उसी प्रकार यह सष्टि भी प्रलय के बाद इसी सुषुप्ति में जाकर समा जाती है और यहां से ताजगी लेकर अपनी सारी ऊर्जा को नया करके फिर रचना में प्रवत हो जाती है। इस सुषुप्ति के संसार में अथाह शांति है, शून्य की अनुभूति है, इसकी गहराई की कोई थाह नहीं है, यही आत्मा की काली रात्रि या डार्क मिस्ट्री है जिसे मिस्टिक सारे सूक्ष्म संसार को पार करने पर अनुभव करता है। यहां पर आकर वह सारे पूर्व-संस्कारों, बुद्धि की कल्पनाओं और धर्म की पूर्व-धारणाओं से मुक्त हो जाता है। सभी आकति, शास्त्र, पूजा-स्थल और यहां तक कि सारे पैगम्बर व अवतार भी यहां आकर अपना रूप खो देते हैं और ईश्वर के इस रूप में आकर लीन हो जाते हैं। ईश्वर का यह रूप बाहर के दोनों रूपों से अछूता है। यही डोगमा है जो क्रिगमा और ट्रिनटी का स्रोत है।

इन तीनों अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण रचना के ऊपर चौथी तुरीयातीत अवस्था है जो मनातीत, भावातीत और विचारातीत है। यह ईश्वर का पुरूषोतम रूप है, सतपुरूष का रूप है। सुषुप्ति के अंधकार में पड़े हुए बीज पुनः जन्म ले सकते हैं लेकिन सतपुरूष के रूप में समाने के बाद सारे बीज, सारे संस्कार जल जाते हैं और राख हो जाते हैं अब उनके जागने का कोई कारण शेष नहीं बचता है। पराप्रकति या राधा धागा बनकर सतपुरूष या परमात्मा के इन चारों रूपों को आपस में गूंथ कर रखती है और पुरूष की शक्ति बनकर



सारे कार्यों को अंजाम भी देती है, उन्हें पूर्ण करती है। जब यह प्रकति पुरूषोतम के रूप में बरतती है तो इसे परामाया, पराप्रकति या पराशक्ति कहा जाता है और जब यह नीचे उतरती है तो इसमें द्वैतवाद, त्रैतवाद, सहस्रवाद पैदा हो जाता है तथा सबसे निचले सिरे पर आकर यह अज्ञानता के अंधकार में खो जाती है, स्वयं को भी भूल जाती है। प्रकति के इस रूप को अपरामाया, अपराप्रकति या अपराशक्ति कहा जाता है। यही कारण है कि स्थूल संसार में आकर आत्मा अपने असली ध्येय को भूल जाती है, अपने स्वयं के पुरूषोतम रूप को भूल जाती है। जिस समुद्र की यह बूंद है उस निजरूप की इसे भूल लग जाती है।

व्यक्तिगत ईश्वर स्पप्निल संसार की पैदायश है जो भावनाओं और मन के विचारों की देन है। ईश्वर का यह रूप परमेश्वर का दरम्यानी रूप है, बीच की एक सीढ़ी है, मील का एक पत्थर है जिसे हमें भूलना होगा क्योंकि ईश्वर का यह रूप आधा सत्य है और आधा सत्य हमेशा भ्रम पैदा करता है, आपस में द्वेष और नफरत पैदा करता है। ईसाई धर्म संसार का सबसे घायल धर्म है क्योंकि इसमें सूली पर झूलते मसीहा की पूजा की जाती है। जीसस के शरीर में लगी एक-एक कील उसे हमेशा सालती रही है और उसे कभी भी चैन से नहीं बैठने दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि ईसाई व्यक्ति कभी भी अपनी उपलब्धि से संतुष्ट नहीं हुआ, उसे शांति नहीं मिली और भविष्य में भी नहीं मिलेगी। मुक्ति तो बहुत दूर की बात है, क्योंकि मुक्ति के लिए तो मन और बुद्धि की सारी झालों को शांत होना होगा। असंतुष्टि को संतुष्टि में बदलना होगा और यह तभी हो सकता है जब हम सूली (क्रास) पर झूलते ईसा मसीह की नहीं बल्कि दया सगार के रूप में आए ईसा मसीह की पूजा कर सकेंगे। हर ईसाई

को यह बात नए सिरे से सोचनी होगी वरना मारगैरेट मेरी की तरह जीसस का घायल रूप हमेशा थोड़ा या बहुत उसे भी घायल करता रहेगा। मारगैरेट मेरी को ईसा मसीह का आशीर्वाद प्राप्त था। उन्हें बलेस्ड ( Blessed) माना जाता है। सोलह सौ बयासी में उनकी स्वप्न में ईसा मसीह के साथ मुलाकात कुछ इस तरह से हुई-

जब जीसस प्रकट हुए तो उनका शरीर घावों से भरा हुआ था। उनका पूजा करने योग्य शरीर खून से लथपथ था और खून चारों तरफ बह रहा था। उन्होंने उदास और कराहती हुई आवाज में कहाः क्या कोई मुझ पर दया करेगा और मेरी सहायता करेगा? क्या कोई मेरे इस असीम दुःख में मेरा सहभागी बनेगा? निर्दयी और पापी लोगों ने मुझे इस हालत में पहुंचा दिया है।

जब तक ईसा मसीह की कराहती हुई आवाज एक भी ईसाई के कानों में पड़ेगी तब तक ईसाईयत कैसे मुक्त हो सकती है और जब तक ईसाईयत या संसार का कोई भी व्यक्ति घायल है तब तक ईसा मसीह की मुक्ति कैसे हो सकती है? ईसा मसीह की मुक्ति तभी होगी जब सारी मानवता आपस में नफरत भूलकर प्यार से रहेगी। धरती पर स्वर्ग का सपना तभी साकार होगा जब सभी धर्मों को समान रूप से देखा जाएगा, उनकी सांस्कतिक और आध्यात्मिक पहचान को कायम रखा जाएगा, उनकी बहुमूल्य धरोहर का संरक्षण किया जाएगा। दूसरे धर्मों की अच्छी बातों को अपनाया जाएगा और अपने धर्म की बुराई का त्याग किया जाएगा। तभी धार्मिक आतंकवाद और साम्प्रदायिक्ता जैसी समस्याओं से मनुष्य को मुक्ति मिलेगी। ईसा मसीह कोई व्यक्तिगत चेतना का नाम नहीं है बल्कि वे दूसरे पैगंबरों और अवतारों की तरह सम्पूर्ण मानवता और अखिल ब्रह्माण्ड की अनाम चेतना का



प्रतीक हैं। जब तक यह चेतना किसी भी रूप में मनुष्य को आन्दोलित करती रहेगी तब तक मनुष्य धार्मिक वैमनस्य और आपसी नफरत से निजात नहीं पा सकेगा। आलम-अल-मिथाल के संसार से बाहर नहीं निकल सकेगा।

# धर्म का भविष्य - एक रूपरेखा

क्या ईश्वर का अस्तित्व है? यदि है तो वह कैसा है? वह कहां रहता है? उसने पाप और अत्याचार क्यों पैदा किए? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो मनुष्य के विचार को हमेशा ही आन्दोलित करते रहे हैं और करते ही रहेंगे। यह आवश्यक भी है क्योंकि एक ऐसा प्रश्न जिसका कोई भी हल न हो व्यक्ति को हमेशा असंतुष्ट बनाकर रखता है और उसकी उन्नति के लिए, उसके चरम विकास के लिए उसका चरम स्तर तक असंतुष्ट होना अति आवश्यक है। असंतुष्टि ही मनुष्य को चलने पर मजबूर करती है, सोने के लिए खींचती है तथा कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। इसी चरम स्तर की असंतुष्टि ने ईश्वर जैसी सत्ता के अस्तित्व को जन्म दिया है, हमारी कल्पना शक्ति को अनंत और असीम तक उड़ान भरने का साहस दिया है और उसी असीम ऊंचाई को प्राप्त करने के लिए जोखिम उठाने व खतरों का सामना करने के लिए असीम शक्ति भी दी है। इसी असीम, अनंत, अपरिमित तक उड़ने वाली कल्पना शक्ति ने हमेशा एक ऐसी सत्ता की कल्पना भी की है जो स्वयं में पूर्ण हो, हर बंधन या हर जंजीर से मुक्त हो, सर्वसमर्थ हो क्योंकि वह स्वयं भी तो ऐसा होना चाहता है। इस होने की चाहत ने ही व्यक्ति का व्यक्ति होना सिद्ध किया है और उसे परमात्मा की ऊंचाई तक पहुंचने का साहस और सामर्थ्य प्रदान किया है। वरना उसमें और एक पशु, एक पौधे और एक पत्थर में अंतर ही क्या है।



मनुष्य के अन्दर विचार करने की शक्ति ने ही उसे अच्छा या बुरा सोचने पर मजबूर किया है, चुनाव करने का अधिकार दिया है और जब तक व्यक्ति चुनाव करता है तब तक वह हर उस वस्तु का चुनाव करेगा और प्राप्त करने की भरसक कोशिश करेगा जो उसकी कल्पना शक्ति में समा जाएगी। इसलिए जब तक विचार है जब तक चुनाव है तब तक सर्वश्रेष्ठ का अस्तित्व भी रहेगा, ईश्वर की धारणा को मिटाया नहीं जा सकता है। अतः व्यक्ति जब तक विचार करता है, वह जब तक कल्पना करता है, वह जब तक चुनाव करता है, वह जब तक होश में है, वह जब तक किसी चीज को अच्छी और किसी चीज को बुरी कहता है, जब तक उसके अन्दर भय है, जब तक वह नफ़रत करता है और जब तक उसके अन्दर प्रेम है तब तक उसे सर्वश्रेष्ठ और सर्वसमर्थ होने की इच्छा रहेगी और जब तक वह सर्वश्रेष्ठ बनना चाहता है तब तक ईश्वर का अस्तित्व भी रहेगा तथा धर्म भी रहेगा इसे नकारा नहीं जा सकता है। धर्म आस्तिक भी हो सकता है और धर्म नास्तिक भी हो सकता है। इंसानी धर्म केवल एक विचार का नाम है, एक दर्शन है चाहे वह दर्शन किसी आस्तिक व्यक्ति का है या चार्वाक या कार्ल मार्क्स का है।

आत्मिक धर्म सबका एक है, शारीरिक और मानसिक धर्म अलग-२ हो सकते हैं। संसार के सभी धर्म मानसिक धर्म हैं। आत्मिक धर्म किसी विचार का नाम नहीं है, यह कोई कल्पना नहीं है, इसमें कोई होश, चुनाव, प्रेम या नफ़रत नहीं है, उसे कुछ नाम नहीं दिया जा सकता है। आत्मिक धर्म को धर्म भी कहना इंसाफ नहीं है क्योंकि

जहां पर धर्म की अभिव्यक्ति है वहां पर तो होश ही नहीं है, वहां पर तो सब कुछ स्थिर हो जाता है, रूप-रंग, आकार, आकति सब कुछ विलीन हो जाता है। जब मन की सारी झालें थम जाती हैं तब आत्मिक धर्म का उदय होता है और जब तक ये चीजें रहती हैं तब तक धर्म केवल इंसानी धर्म है, मानसिक धर्म है, वह सार्वभौमिक धर्म नहीं हो सकता है, वह पौधों और पशुओं का धर्म नहीं हो सकता है तथा जब तक धर्म सार्वभौमिक धर्म नहीं है तब तक वह अधूरा है, पंगू है, अक्षम है, ऐसा धर्म खुदा का धर्म कैसे हो सकता है? यह तो केवल एक मनुष्य, पैगम्बर या किसी अवतार की खींची हुई लकीर है जिसकी कोई सीमा है, परिधि है, चुनाव है। क्या असीम की सीमा हो सकती है? क्या अनंत को किन्हीं शब्दों में बांधा जा सकता है? आत्मिक धर्म की दष्टि से तो ईश्वर को ईश्वर कहना या खुदा को खुदा कहना भी ईश्वर और खुदा के साथ नाइंसाफी प्रतीत होती है क्योंकि गहरी निद्रा में जाकर आप किस धर्म को नाम दे सकते हैं, किस ईश्वर की साधना कर सकते हैं।

सुषुप्ति में जाकर मन की सारी धारणाएं, सारे विस्तार थम जाते हैं। यही सुषुप्ति व्यक्ति का अन्तरतम आधार है जहां पर जाकर वह पूर्ण विश्राम को प्राप्त होता है, उसके मन की सारी हलचल शांत हो जाती है और यहीं से व्यक्ति थकी हुई ऊर्जा को ताजगी देकर पुनः क्रियाशील हो उठता है, कार्य करने के योग्य हो पाता है। आत्मिक धर्म का स्रोत वही स्थान हो सकता है जहां जाने के बाद व्यक्ति के मन और शरीर को शक्ति मिलती है, वह ताजगी और नयापन अनुभव



करता है। जब व्यक्ति का जन्म इस आत्मिक धर्म के अन्दर हो जाता है, उसके मन की सारी हलचल शांत हो जाती है तब वह एक नहीं अनेक जीवों को जीवन प्रदान कर सकता है। वह स्वयं नूर बनकर दूसरों को भी नूर बांट सकता है। कोई भी धर्म-स्थल उसके लिए व्यर्थ हो जाता है। किसी भी तीर्थ की यात्रा और धार्मिक ग्रंथ केवल मील के पत्थर बन जाते हैं जो केवल मंजिल की तरफ संकेत करते हैं, लेकिन स्वयं मंजिल नहीं हैं।

इस संसार में ऐसे आत्मिक धर्म की निकटतम अभिव्यक्ति प्रेम है। प्रेम हर व्यक्ति के अन्दर मौजूद है, सष्टि के हर कण में व्याप्त है। प्रेम के इसी खिंचाव के कारण ही एक वस्तु दूसरी वस्तु या एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की तरफ खिंचे जा रहे हैं। पथ्वी सूर्य के चक्कर लगा रही है और सूर्य किसी दूसरे सूर्य के चक्कर लगा रहा है, एक आकाशगंगा दूसरी आकाशगंगा के चारों तरफ घूम रही है। प्रेम की कोई सीमा नहीं हो सकती है इसीलिए प्रेम असीम का अनुभव समेटे हुए है। प्रेम का कोई अंत नहीं है इसलिए वह अनंत को अभिव्यक्त करता है। प्रेम के लिए जाति-पाति, धर्म-सम्प्रदाय, व्यक्ति-पशु, रंग-रूप या देश-देशान्तर का भेद कोई मायने नहीं रखता है। वह काल, स्थान और मन के भी पार चला जाता है। प्रेम को किसी शब्दों में नहीं बांधा जा सकता है, वह निर्बन्धी है। प्रेम की भाषा केवल मौन है, अस्तित्व की भाषा भी मौन है। आत्मिक प्रेम में सुलह-सफाई या तर्क के लिए कोई स्थान नहीं है, केवल समझ है, विवेकख्याति है। प्रेम भक्ति को जन्म देता है और केवल भक्ति, श्रद्धा और समर्पण से ईश्वर

को प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि प्रेम ही स्वयं को मिटा सकता है, किसी भी विचार, कल्पना या होश के पार जा सकता है। केवल प्रेम ही ऐसा गुण है जिसके वशीभूत होकर व्यक्ति अपने कर्तव्य के लिए अपनी जान की परवाह नहीं करता है। ज्ञान को छिपाया जा सकता है लेकिन प्रेम को नहीं छिपाया जा सकता है। कबीर साहब कहते हैं-

**प्रेम छिपाया ना छिपे, जा घट प्रगट होय।**
**जे मुख ते बोले नाहिं, नैन देत हैं रोय।।**

ज्ञान सीखने के लिए व्यक्ति को कुछ करना पड़ता है, सीखना पड़ता है, लेकिन प्रेम तो हर एक के अन्दर स्वयं जनित है। ज्ञान की एक सीमा होती है, प्रेम सीमारहित है। ज्ञान हर व्यक्ति का भिन्न-२ होता है लेकिन प्रेम का फल केवल एक ही है और वह है आनन्द अर्थात् अपने प्रेमी के अन्दर फनाह हो जाना। आत्मिक प्रेम की अपने प्रेमी से कोई मांग नहीं हो सकती है। उसकी कोई शर्त नहीं हो सकती है। प्रेमी की खुशी ही प्रेम की उच्चतम उपलब्धि है। यदि प्रेम में स्वार्थ है तो वह प्रेम आत्मिक नहीं हो सकता है। इस्लाम में सूफी सम्प्रदाय का आधार केवल प्रेम है जिसमें मुरीद (शिष्य) स्वयं को शेख, रसूल और अल्लाह में फनाह कर देता है। अकबर बादशाह ने दादू महाराज से पूछा कि खुदा की जात, रंग वजूद क्या है? और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है तो दादू महाराज ने कहाः

**ईश्क खुदा की जात है, ईश्क खुदा का रंग।**
**ईश्क खुदाई वजूद है, ईश्क खुदा के संग।।**

संत आगस्टिन ईसाई धर्म के स्तम्भ माने जाते हैं, वे ईश्वर से



बहुत प्यार करते थे। ईश्वर के दर्शन के लिए तड़फते थे और विरह में दिन रात रोते रहते थे। वे अपने इस दर्शन का वर्णन 'कन्फैसन्स' में इस प्रकार करते हैंः ''हे ईश्वर! तुम इतने सुन्दर हो और हर एक का स्रोत हो कि मैं तुमसे प्यार करने से चूक गया। मुझे बहुत देर हो गई और देखो, तुम मेरे अन्दर ही थे और मैं तुम्हें खोजने के लिए बाहर संसार में भटक रहा था। मैं अपनी इस अप्रिय अवस्था में उन चीजों से प्यार करता रहा तथा उनके पीछे दौड़ता रहा जो तुमने बनाई हैं। तुम हमेशा मेरे साथ रहे लेकिन मैं तुम्हारे साथ नहीं था। संसार की इन प्यारी चीजों ने मुझको तुमसे दूर रखा, यद्यपि इन वस्तुओं के सुख का तुम्हारे अन्दर कोई अस्तित्व नहीं है, वे पूर्णतया अस्तित्वहीन हैं।'' आगस्टिन का यह अनुभव सुकरात, प्लेटो, प्लोटीनस, बुद्ध, सूफी मत, हिन्दू धर्म, यहूदी धर्म के कबाला और रबीज पंथ के रहस्यदर्शियों से अत्यधिक मेल खाता है।

ईसा मसीह कहते हैं कि ईश्वर का साम्राज्य मनुष्य के अन्दर ही है। जितने भी गूढ़ रहस्य को जानने वाले संत-महात्मा आए उन्होंने यही कहा कि ईश्वर कहीं दूर नहीं है। वह हमारे अन्दर है। उसे बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं है और जिसने भी इस अनुभव को जाना उसी ने कहा कि ईश्वर का नूर सष्टि के हर कण, हर चेहरे और हर आकति में समाया हुआ है और इन सबसे परे भी उसका आनन्दरूप है; तुरीयातीत, मनातीत, विचारातीत और भावातीत रूप है जो किसी चेहरे या आकति का मोहताज नहीं है, स्वयं में ही पूर्ण है। इस रूप का वर्णन करना अति कठिन है। केवल मौन रहकर ही उसके बारे

में कुछ संकेत किया जा सकता हैं। वाणी उस अनुभव में जाकर ठहर जाती है, दष्टि फनाह हो जाती है, आवाज अनाहत में समा जाती है, सारा ज्ञान चूक जाता है लेकिन फिर भी कहा जाता है कि जो उसे जान लेता है उसके लिए कुछ जानना बाकी नहीं रहता है- **यस्मिन विज्ञाते सर्वम् विज्ञातम्।** उसके सामने समस्त निधियां समर्पण कर देती हैं क्योंकि उसकी आत्मा की स्थापना मणिपीठ में हो जाती है। आंधी आए, तूफान आए उस मणि का प्रकाश क्षीण नहीं होता है। आत्मा दीपक की तरफ हमेशा ही प्रज्जवलित रहती है, खुदा का नूर हमेशा उसमें झालें मारता रहता है। अल्लाह की नियामतें हमेशा उसे सिजदा करती हैं। सूक्ष्म, सात्विक व दैविक शक्तियां उसकी सेवा में हाजिर रहती हैं।

ऐसा व्यक्ति स्वयं तो प्रकाश का स्रोत बन ही जाता है बल्कि उसके आसपास का वातावरण भी आलोकित होने लगता है, चार्ज होने लगता है, वहां पर धीरे-२ सारी बरकतें सिमटकर आने लगती हैं। वह परमात्मा की शक्ति का जीवित स्रोत बन जाता है। ऐसे व्यक्ति के अन्दर यदि पूरी तरह सूर्य-ब्रह्म (विज्ञानमय पुरूष) का अवतरण हो गया है तो चलते-२ इतिहास की धारा अपना रूख बदल लेती है। वहां अपने समय पर एक नयी सष्टि का जन्म होता है। अध्यात्म के साथ-साथ आर्थिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक और सामाजिक चेतना भी उफान पर आ जाती है। शास्त्र कहता है-तत् सत्यं सूर्यम् तमसि क्षियन्तम् अर्थात् जब सत्य का सूर्य उदय होता है तो अंधकार छटने लगता है और उस आध्यात्मिक सूर्य की चमक कभी कम नहीं होती है-आदित्यवत् प्रकाशयति तत् परम्।



ईश्वर के साम्राज्य की स्थापना कब होगी? जब यह सूर्य-ब्रह्म हर व्यक्ति की आत्मा में आलोकित होगा और हर आत्मा इस सूर्य की रश्मि बनकर चमकेगी। ऐसा सूर्य जो अपना प्रकाश सबके ऊपर समान रूप से फेंकता है, किसी के साथ भी पक्षपात नहीं करता है। अपनी ऊर्जा सबके साथ बांटता है। इसकी अग्नि की गर्मी सब वस्तुओं और व्यक्तियों को बराबर प्रभावित करती है लेकिन जो ग्राहक हैं वे शीघ्र ही लाभान्वित हो जाते हैं और जो दुष्ग्राही हैं वे अपने स्वभाव के कारण स्वयं ही घाटे में रहते हैं। मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरूद्वारा या सिनागोग उसके सामने दूसरे प्राणविहीन अस्तित्व के समान हैं जिनका होना या न होना उसके लिए कोई मायने नहीं रखता है। दुनियां का कोई भी शास्त्र इसके सामने बौना है और अपनी सीमाओं को नहीं लांघ सकता है, यदि लांघता है तो उस आध्यात्मिक सूर्य की गर्मी में उसके पंख भी उसी प्रकार जल जाते हैं जिस प्रकार एक उड़ता हुआ पक्षी आकाश के सूर्य की गर्मी से निष्प्राण हो जाता है। अपनी क्षमता के अनुसार हर कोई अपनी भावनाओं को व्यक्त कर सकता है, ऐसी भावनाएं जो दूसरे जीवों को केवल जीवन देती है, उसमें ऊर्जा का संचार करती हैं, जीवन को रोकती नहीं हैं, उसमें सड़न पैदा नहीं करती हैं बल्कि जन्म-मत्यु और सुख-दुःख के भंवर में भी संतुष्ट रहती हैं।

ईश्वर के ऐसे साम्राज्य की स्थापना आज के दुषित धार्मिक समाज में नहीं हो सकती है। इसके लिए हमें अपने द्वारा स्थापित की गई हर धारणा को गिराना होगा क्योंकि ईश्वर को किसी भी

धारणा में नहीं बांधा जा सकता है। वह हर विपरीत ऊर्जा का संगम-स्थल है। वह ईश्वर और अनिश्वर अर्थात् आस्तिकता और नास्तिकता दोनों का उद्‌गम व समागम स्थान है। उसके अन्दर जाकर हर विपरीत अवस्था तालबद्ध व लयबद्ध हो जाती है जिस प्रकार हमारी जागति और स्वप्न की चेतना परस्पर विरोधी होने के बावजूद भी सुषुप्ति में जाकर लयबद्ध हो जाती हैं और विपरीत स्वभाव के होते हुए भी सुषुप्ति से लौटकर दोनों ही ऊर्जावान बनती हैं। एक दूसरे की सहयोगी बन जाती हैं, एक दूसरे के लिए सुषुप्ति तक जाने के लिए सीढ़ी का काम करती हैं। ईश्वर के ऐसे साम्राज्य में ईश्वर के व्यक्तिगत (परसनल) स्वरूप के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता है क्योंकि सारे पैगम्बर, अवतार और देवता उसके निराकार स्वरूप से तराशे गए अलग-२ आकार हैं जिस प्रकार एक ही पथ्वी की मिट्‌टी से भिन्न-२ प्रकार के बर्तन आकार में आ जाते हैं और एक ही सोने से अलग-२ तरह के आभूषण अस्तित्व में आ जाते हैं। यदि व्यक्तिगत ईश्वर है तो यह केवल एक सीढ़ी है, मंजिल नहीं। प्रेम के मार्ग में कोई भी रूप-रेखा दरम्यानी अवस्था हो सकती है, मंजिल नहीं।

कोई भी व्यक्ति या गुरू ईश्वर के रूप में समाकर ईश्वरमय हो सकता है लेकिन जिस व्यक्ति ने स्वयं को मिटा दिया है वह यह घोषणा भी कैसे कर सकता है कि मैं ईश्वर हूं, मैं खुदा हूं। यह सही है कि खुदा के अनुभव में जाकर व्यक्ति इतना पाक और निर्मल हो जाता है कि वह अपनी मस्ती में चूर होकर कुछ भी बोल देता है-अहम् ब्रह्मास्मि, तत्वमसि या अनलहक भी कह सकता है क्योंकि



उसे ईश्वर के ऐसे अखण्ड और आनन्द रूप का अनुभव हुआ है जिसका वर्णन अतुलनीय है लेकिन इसके साथ-२ यह भी तो सत्य है कि यदि मैं ब्रह्म हूं तो तुम भी ब्रह्म हो। मैं ईश्वर का पुत्र हूं तो तुम भी ईश्वर के पुत्र हो। यदि मैं ईश्वर के साम्राज्य में ईश्वर का अविभाजित और अटूट अंग बन सकता हूं तो तुम भी उसी सत्ता के बराबर भागीदार हो सकते हो। फिर भी कितना अच्छा हो यदि व्यक्ति सुकरात की तरह यह घोषणा कर सके कि मैं जो कुछ जान पाया हूं वह सिर्फ इतना कि मैं कुछ नहीं जानता।

**राधास्वामी।**

# जिज्ञासुओं के लिए प्रश्न

- क्या धर्म रोजी-रोटी दे सकता है?
- क्या अध्यात्म से दु:खों का छुटकारा हो सकता है?
- क्या अध्यात्म धन और आश्रमों का मोहताज हो गया है?
- क्या सत्संग केवल धन कमाने का साधन बन गया है?
- क्या धर्म देश और समाज को सुरक्षा दे सकता है?
- क्या धर्म बिखरे व्यक्तित्व और समाज को जोड़ सकता है?
- क्या परमात्मा अमीर लोगों की धरोहर बन गया है?
- अध्यात्म क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है?
- क्या अध्यात्म, विज्ञान और संसार एक दूसरे के विरोधी हैं?
- क्या शरीर, मन व आत्मा अलग-अलग हैं?
- कुण्डलीनी जागरण क्या है?
- अनहद शब्द व धुन में क्या अन्तर है?
- परम्परावादी और आत्मनिष्ठ धर्म में क्या अन्तर है?
- कर्मकाण्ड बन्धन व दु:ख का कारण क्यों बन जाता है?
- सभी धर्मों की उत्पत्ति मानसिक संसार से है, कैसे?
- अच्छी संगत से बुरे कर्म कैसे कट जाते हैं?
- सतगुरू सूली का दर्द सूल में कैसे बदल देता है?
- सिद्ध पुरूष की इच्छा शक्ति मजबूत क्यों हो जाती है?
- सृष्टि की प्रलय व शरीर की मृत्यु का क्या सम्बन्ध है?
- अभ्यास की अट्ठारह मंजिलें कौन सी हैं?
- क्या भाग्य को बदला जा सकता है?
- क्या मन व अंहकार वास्तव में बुरे हैं?
- अध्यात्म के लिए विशाल दृष्टि जरूरी क्यों?
- सुरत-शब्द योग का मार्मिक रहस्य क्या है?
- व्यक्तिगत अस्तित्व व ब्रह्माण्ड में कितनी समानता है?
- ध्यान से समस्याओं का समाधान कैसे मिलता है?
- ध्यान से संसार का विनाश भी हो सकता है, कैसे?
- प्रेतात्मा व देवात्मा के प्रकट होने का कारण व अर्थ
- उत्पत्ति व प्रलय का वैज्ञानिक व अध्यात्मिक आधार क्या है?
- नाम व ध्यान का विज्ञान क्या है?
- कामधेनू गाय व कल्ववृक्ष की प्राप्ति क्या है?
- असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति कैसे हो?

.....इत्यादि प्रश्नों के उत्तर जानिऐ?

राधास्वामी सत्संग ताराधाम, कुरूक्षेत्र



# पुस्तक सूची


1. सतगुरू ताराचन्द जी महाराज के 101 अनमोल रत्न
2. रूहानी पत्र व सतगुरू आदेश
3. आत्मिक सफर और रूहानी मंजिलें (प्रश्नोतरी)
4. संत अवतरण
5. सम्यक समाधि : आत्मिक सफर की कहानी
6. पुरूष-प्रकृति
7. ईसा-मसीह कौन हैं?
8. युद्ध और जीवन दर्शन
9. अवतार अवतरण रहस्य
10. अध्यात्म से इच्छा शक्ति मजबूत कैसे होती है?
11. प्रेम और भक्ति का शिखर
12. सत्य और धर्म का अनुभव क्या इसी जन्म में संभव है?
13. टूटते रिश्ते बढ़ता अंधविश्वास व अध्यात्म
14. बच्चों पर सत्संग का प्रभाव
15. विश्व की समस्याएं और आध्यात्मिक समाधान
16. पृथ्वी पर ईश्वर का साम्राज्य
17. क्या धर्म, विज्ञान और संसार अलग-अलग हैं?
18. मनुष्य के लिए अध्यात्म जरूरी क्यों ?
19. आध्यात्मिक संकल्प, मार्ग एवं लक्ष्य